

Chapter तेईस

देवहूति का शोक

मैत्रेय उवाच

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा ।

नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; पितृभ्याम्—माता-पिता के द्वारा; प्रस्थिते—प्रस्थान करने पर; साध्वी—पतिव्रता; पतिम्—अपने पति की; इङ्गित-कोविदा—मनोभावों को जानने वाली; नित्यम्—निरन्तर; पर्यचरत्—सेवा की; प्रीत्या—प्रेमपूर्वक; भवानी—देवी पार्वती; इव—समान; भवम्—शिवजी की; प्रभुम्—अपने स्वामी।

मैत्रेय ने कहा—अपने माता-पिता के चले जाने पर अपने पति की इच्छाओं को समझनेवाली पतिव्रता देवहूति अपने पति की प्रतिदिन प्रेमपूर्वक सेवा करने लगी जिस प्रकार भवानी अपने पति शंकर जी की करती हैं।

तात्पर्य : भवानी का विशेष रूप से दिया गया उदाहरण महत्त्वपूर्ण है। भवानी का अर्थ है भव अर्थात् शिवजी की पत्नी। हिमालयराज की कन्या भवानी अथवा पार्वती ने शिवजी को अपना पति चुना जो भिक्षुक की तरह प्रतीत होते हैं। राजकुमारी होते हुए भी उन शिवजी को पाने के लिए उन्होंने अनेक कष्ट सहे, जिनके पास घर तक न था और जो एक वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान में अपना सारा समय बिताते थे। यद्यपि भवानी एक बहुत बड़े राजा की कन्या थीं, किन्तु वे भिक्षुणी के समान शिवजी की सेवा किया करती थीं। इसी प्रकार देवहूति सम्राट् स्वायंभुव मनु की कन्या थी तो भी उसने कर्दममुनि को अपने पति के रूप में वरण किया। वह उनकी अत्यन्त प्रेमपूर्वक सेवा करती और उन्हें प्रसन्न करना जानती थी। अतः उसे यहाँ पर साध्वी कहा गया है, जिसका अर्थ होता है, 'पतिपरायणा पत्नी या पतिव्रता स्त्री'। यह दुर्लभ उदाहरण वैदिक सभ्यता का आदर्श है। प्रत्येक स्त्री को देवहूति या भवानी के सदृश श्रेष्ठ तथा पतिव्रता होना चाहिए। आज भी हिन्दू समाज में अविवाहित लड़कियों को शंकर जी की पूजा करने के लिए कहा जाता है, जिससे उन्हें उनके समान पति मिले। शिव जी ऐश्वर्य या इन्द्रियतृप्ति की दृष्टि से नहीं वरन् भक्तों में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण आदर्श पति हैं। वैष्णवानां यथा शुम्भः—शुम्भ या शिवजी आदर्श वैष्णव हैं। वे भगवान् राम का निरन्तर ध्यान करते हैं

और हरे राम, हरे राम, हरे हरे, मन्त्र का जप करते रहते हैं। शिवजी का एक वैष्णव-सम्प्रदाय है, जो विष्णुस्वामी सम्प्रदाय कहलाता है। अविवाहित कन्याएँ शिवजी की पूजा इसीलिए करती हैं जिससे उनके समान ही वैष्णव पति प्राप्त हो। लड़कियों को कभी भी धनी या ऐश्वर्यवान पति चुनने की शिक्षा नहीं दी जाती, किन्तु यदि लड़की इतनी भाग्यवान होती है कि उसे शिवजी के समान उत्तम भक्त पति प्राप्त हो तो उसका जीवन सफल हो जाता है। पत्नी अपने पति पर आश्रित होती है और यदि पति वैष्णव हुआ तो वह अपने पति की भक्ति में हिस्सा बँटाती है, क्योंकि वह उसकी सेवा करती है। पति तथा पत्नी के बीच इस प्रकार सेवा तथा प्रेम का आदान-प्रदान गृहस्थ जीवन के लिए आदर्श है।

विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ।

शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

विश्रम्भेण—आत्मीयता से; आत्म-शौचेन—मन तथा देह की शुद्धता से; गौरवेण—सम्मान से; दमेन—इन्द्रियों को वश में करके; च—तथा; शुश्रूषया—सेवा से; सौहृदेन—प्रेम से; वाचा—वाणी से; मधुरया—मीठी; च—तथा; भोः—हे विदुर!.

हे विदुर, देवहृति ने अत्यन्त आत्मीयता और आदर के साथ, इन्द्रियों को वश में रखते हुए, प्रेम तथा मधुर वचनों से अपने पति की सेवा की।

तात्पर्य : यहाँ पर *विश्रम्भेण* तथा *गौरवेण*—ये दो शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। देवहृति ने इन्हीं दो विधियों से अपने-पति की सेवा की। ये दोनों विधियाँ हैं जिनके द्वारा पति अथवा श्रीभगवान् की सेवा की जाती है। *विश्रम्भेण* का अर्थ है “आत्मीयतापूर्वक” और *गौरवेण* का अर्थ है “अत्यन्त सम्मानपूर्वक।” पति अत्यन्त आत्मीय मित्र होता है, अतः पत्नी को चाहिए कि आत्मीय मित्र की भाँति पति की सेवा करे और साथ ही पति की स्थिति की श्रेष्ठता को भी समझे। इस प्रकार वह उसका सभी प्रकार से सम्मान करे। एक पुरुष तथा एक स्त्री के मनोभावों में अन्तर होता है। अपनी शारीरिक संरचना के कारण पति सदैव पत्नी से श्रेष्ठ (विशिष्ट) बने रहना चाहता है और स्त्री शारीरिक संरचना के कारण स्वाभाविक रूप से अपने पति से अवर कोटि की होती है। अतः स्वाभाविक प्रवृत्ति यही है कि पति अपने को पत्नी से

श्रेष्ठ मानता है और इसका पालन किया जाना चाहिए। यदि पति से कोई गलती हो जाए, तो भी पत्नी को सह लेना चाहिए और इस प्रकार पति तथा पत्नी के बीच मनमुटाव नहीं रहेगा। *विश्रम्भेण* का अर्थ “आत्मीयता के साथ” है, किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि, “मान घटे नित घर के जाये।” वैदिक सभ्यता के अनुसार पत्नी अपने पति को नाम से सम्बोधित नहीं कर सकती। आधुनिक सभ्यता में पत्नी अपने पति का नाम लेकर बुला सकती है, किन्तु हिन्दू सभ्यता में ऐसा नहीं है। इस प्रकार निम्नता तथा श्रेष्ठता का द्वैत चलता है। *दमेन च*—पत्नी को किसी प्रकार का मनमुटाव होने पर अपने को वश में रखना सीखना चाहिए। *सौहृदेन वाचा मधुरया* का अर्थ है सदैव पति के कल्याण की आकांक्षा करना और उसमें मीठे वचन बोलना। बाह्य जगत में मनुष्य अनेक कारणों से विक्षुब्ध हो सकता है, अतः स्त्री को चाहिए कि घर में उससे मीठे वचन बोले।

विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् ।
अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

विसृज्य—त्याग कर; कामम्—काम-वासना; दम्भम्—गर्व; च—तथा; द्वेषम्—द्वेष; लोभम्—लोभ, लालच; अघम्—पापपूर्ण कृत्य; मदम्—मद, घमण्ड; अप्रमत्ता—समझदार; उद्यता—तत्पर रहकर; नित्यम्—सदैव; तेजीयांसम्—अपने अत्यन्त शक्तिशाली पति को; अतोषयत्—प्रसन्न कर लिया।

बुद्धिमानी तथा तत्परता के साथ कार्य करते हुए उसने समस्त काम, दम्भ, द्वेष, लोभ, पाप तथा मद को त्यागकर अपने शक्तिशाली पति को प्रसन्न कर लिया।

तात्पर्य : यहाँ पर एक महान् पति की महान् पत्नी के कुछ गुण दिये गये हैं। कर्दम मुनि अपनी आध्यात्मिक योग्यता के कारण महान् हैं। ऐसा पति *तेजीयांसम्* अर्थात् परम शक्तिमान कहलाता है। भले ही पत्नी आध्यात्मिक ज्ञान में अपने पति के समान योग्य हो, किन्तु उसे इसका वृथा गर्व नहीं होना चाहिए। कभी-कभी पत्नी अत्यन्त सम्पन्न परिवार की होती है, जिस प्रकार कि सम्राट् स्वायंभुव मनु की पुत्री देवहूति थी। वह अपने पितृकुल पर इतरा सकती थी, किन्तु ऐसा करना वर्जित है, उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। उसे अपने पति के प्रति विनम्र होना चाहिए और समस्त प्रकार के मिथ्या घमंड को त्याग देना चाहिए। ज्योंही पत्नी को अपने मायके पर गर्व

होने लगता है त्योंही इससे पति-पत्नी के बीच मनमुटाव उत्पन्न होता है और उनका वैवाहिक जीवन चौपट हो जाता है। देवहूति इस मामले में अत्यन्त सतर्क थी इसीलिए यह कहा गया है कि उसने पूर्णतया गर्व का परित्याग कर दिया था। देवहूति कृतघ्न न थी। पत्नी का सबसे पापमय कृत्य है दूसरा पति या प्रेमी बनाना। चाणक्य पण्डित ने घर के चार शत्रु बताये हैं। यदि पिता ऋणी हो तो वह शत्रु है; यदि माता अपने वयस्क संतान के होते हुए दूसरा पति चुन ले तो वह शत्रु है; यदि पत्नी अपने पति के साथ अभद्र व्यवहार करे तो वह शत्रु है; और यदि पुत्र मूर्ख हो तो वह भी शत्रु है। पारिवारिक जीवन की सम्पत्ति पिता, माता, पत्नी तथा सन्तान हैं किन्तु यदि पत्नी या माता अपने पति या पुत्र के होते हुए दूसरा पति चुन ले तो वैदिक सभ्यता के अनुसार वह शत्रु है। साध्वी तथा आज्ञाकारी पत्नी को कभी परपुरुष-गमन नहीं करना चाहिए—यह सबसे बड़ा पाप है।

स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् ।

दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ॥ ४ ॥

कालेन भूयसा क्षामां कर्षितां व्रतचर्यया ।

प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाब्रवीत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (कर्दम); वै—निश्चय ही; देव-ऋषि—दैवी साधुओं में; वर्यः—सर्वश्रेष्ठ; ताम्—उस; मानवीम्—मनु की पुत्री को; समनुव्रताम्—पूर्णतः अनुरक्त; दैवात्—विधाता की अपेक्षा; गरीयसः—महान्; पत्युः—अपने पति से; आशासानाम्—आशावान्; महा-आशिषः—महान् आशीर्वाद; कालेन भूयसा—दीर्घकाल तक; क्षामाम्—दुर्बल; कर्षिताम्—क्षीण; व्रत-चर्यया—धार्मिक चर्या से; प्रेम—प्रेम से; गद्गदया—विह्वल, रुद्ध; वाचा—वाणी से; पीडितः—विजित; कृपया—दया से; अब्रवीत्—कहा।

पतिपरायणा मनु की पुत्री अपने पति को विधाता से भी बड़ा मानती थी। इस प्रकार वह उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ किये रहती थी। दीर्घकाल तक सेवा करते रहने से धार्मिक व्रतों को रखने के कारण वह अत्यन्त क्षीण हो गई। उसकी दशा देखकर देवर्षिश्रेष्ठ कर्दम को उस पर दया आ गई और वे अत्यन्त प्रेम से गद्गद वाणी में बोले।

तात्पर्य : पत्नी के पति की ही कोटि की होने की अपेक्षा की जाती है। उसे पति के सिद्धान्तों के पालन के लिए उद्यत रहना चाहिए तभी जीवन सुखी रह सकता है। यदि पति

भक्त हुआ और पत्नी भौतिकवादी, तो घर में शान्ति नहीं रह सकती। पत्नी को पति की रुचि देखकर तदनुरूप आचरण करना चाहिए। *महाभारत* से हमें पता चलता है कि गांधारी को ज्ञात हो गया कि उसका भावी पति धृतराष्ट्र अन्धा है, तो वह स्वयं अंधेपन का अभ्यास करने लगी। इस तरह उसने आँखें बन्द कर लीं और अंधी स्त्री की भाँति व्यवहार करने लगी अन्यथा उसे अपनी आँखों का गर्व होता और उसका पति उसे निकृष्ट लगता। *समनुव्रत* शब्द सूचित करता है कि यह पत्नी का कर्तव्य है कि वह जिस परिस्थिति में उसका पति हो उसके अनुसार अपने को ढाले। निस्सन्देह, यदि पति कर्दम के समान महान् हुआ तो उसके अनुगमन से अच्छा फल निकलता है। किन्तु यदि पति कर्दम के समान महान् भक्त न हो तो भी पत्नी का यह कर्तव्य है कि वह अपने पति की रुचि के अनुसार ढले। इससे विवाहित जीवन सुखमय बन जाता है। यहाँ इसका भी वर्णन हुआ है कि साध्वी स्त्री का कठोर व्रत साधने से राजकुमारी देवहूति अत्यन्त दुबली हो गई थी जिससे उसके पति को दया आ गई। उन्हें पता था कि वह एक सम्राट की पुत्री हो कर भी सामान्य स्त्री की भाँति उनकी सेवा में लगी है। ऐसा करने से उसका स्वास्थ्य दुर्बल हो गया, फलतः मुनि दयार्द्र हो उठे और उससे इस प्रकार बोले।

कर्दम उवाच

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः

शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ।

यो देहिनामयमतीव सुहृत्स देहो

नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

कर्दमः उवाच—परम साधु कर्दम ने कहा; तुष्टः—प्रसन्न हूँ; अहम्—मैं; अद्य—आज; तव—तुमसे; मानवि—हे मनु की पुत्री; मान-दायाः—सम्माननीय; शुश्रूषया—सेवा से; परमया—सर्वश्रेष्ठ; परया—उच्चतम; च—तथा; भक्त्या—भक्ति से; यः—जो; देहिनाम्—देहधारियों को; अयम्—यह; अतीव—अत्यन्त; सुहृत्—प्रिय; सः—वह; देहः—देह; न—नहीं; अवेक्षितः—ध्यान दिया गया; समुचितः—ठीक से; क्षपितुम्—व्यय करना; मत्-अर्थे—मेरे लिए।

कर्दम मुनि ने कहा—हे स्वायंभुव मनु की मानिनी पुत्री, आज मैं तुम्हारी अत्यधिक अनुरक्ति तथा प्रेमपूर्ण सेवा से बहुत प्रसन्न हूँ। चूँकि देहधारियों को शरीर अत्यन्त प्रिय है, अतः मुझे आश्चर्य हो रहा है कि तुमने मेरे लिये अपने शरीर को उपेक्षित कर रखा है।

तात्पर्य : यहाँ यह बतलाया गया है कि सबको अपना शरीर अत्यन्त प्रिय है, किन्तु

देवहूति अपने पति के प्रति इतनी श्रद्धालु थी कि वह न केवल अत्यन्त अनुरक्ति, सेवा तथा सम्मान से पति की सेवा कर रही थी, वरन् उसे अपने स्वास्थ्य तक की परवाह नहीं थी। इसी को निःस्वार्थ सेवा कहते हैं। ऐसा लगता है कि उसे अपने पति से इन्द्रिय-सुख नहीं प्राप्त था, अन्यथा उसका स्वास्थ्य क्षीण न होता। कर्दम मुनि की आध्यात्मिक उन्नति के लिए वह कार्य कर रही थी, निरन्तर उनकी सहायता करती थी और उसे अपने शारीरिक सुख की परवाह न थी। आज्ञाकारिणी तथा साध्वी पत्नी का यह धर्म है कि सब प्रकार से पति की सहायता करे, विशेष रूप से जब पति कृष्णभावनामृत में संलग्न हो। इस दृष्टान्त में, पति ने भी पत्नी को ठीक से पुरस्कृत किया। सामान्य पुरुष की पत्नी को कभी ऐसी आशा नहीं रहती।

ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपःसमाधि

विद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ।

तानेव ते मदनुसेवनयावरुद्धान्

दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

ये—जो; मे—मेरे द्वारा; स्व-धर्म—अपना धार्मिक जीवन; निरतस्य—पूर्णतया लगे रहकर; तपः—तपस्या में; समाधि—ध्यान में; विद्या—कृष्णभावनामृत में; आत्म-योग—मन को स्थिर करके; विजिताः—प्राप्त किया गया; भगवत्-प्रसादाः—भगवान् के आशीर्वाद; तान्—उनको; एव—भी; ते—तुम्हारे द्वारा; मत्—मुझको; अनुसेवनया—भक्ति से; अवरुद्धान्—प्राप्त की गईं; दृष्टिम्—दिव्य दृष्टि; प्रपश्य—देखो; वितरामि—मैं दे रहा हूँ; अभयान्—भयसे रहित; अशोकान्—शोक से रहित।

कर्दम मुनि ने आगे कहा—मैंने तप, ध्यान तथा कृष्णभक्ति का अपना धार्मिक जीवन बिताते हुए भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त किया है। यद्यपि तुम्हें भय तथा शोक से रहित इन उपलब्धियों (विभूतियों) का अभी तक अनुभव नहीं है, किन्तु इन सबों को मैं तुम्हें प्रदान करूँगा, क्योंकि तुम मेरी सेवा में लगी हुई हो। अब उन्हें देखो तो। मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि प्रदान कर रहा हूँ जिससे तुम देख सको कि वे कितनी सुन्दर हैं।

तात्पर्य : देवहूति केवल कर्दम मुनि की सेवा में लगी रहती। वह तप, ध्यान या कृष्णभावनामृत में इतनी अग्रसर न थी, किन्तु अदृष्ट रूप से अपने पति की उपलब्धियों में हिस्सा प्राप्त कर रही थी, जिन्हें वह न तो देख सकती थी, न अनुभव कर सकती थी। उसे ये समस्त भगवान् की कृपाएँ स्वतः प्राप्त हो गईं।

भगवान् की ये कृपाएँ हैं क्या? यहाँ पर कहा गया है कि अभय ही वह कृपा है। इस भौतिक जगत में यदि कोई दस लाख डालर एकत्र कर लेता है, तो वह सदा डरा रहता है, क्योंकि सोचता है कि यदि यह धन चला गया तो फिर क्या होगा। किन्तु भगवत्-प्रसाद अर्थात् भगवान् द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसका तो उपभोग ही करना होता है। उसकी क्षति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। मनुष्य को सुलभ उपलब्धि होती है और इस उपलब्धि का आनन्द मिलता है। *भगवद्गीता* में भी इसकी पुष्टि हुई है—जब भगवान् की कृपा प्राप्त होती है, तो *सर्व-दुःखानि* अर्थात् सभी प्रकार के दुख नष्ट हो जाते हैं। दिव्य स्थिति प्राप्त होने पर अहंकार तथा शोक इन दो भव-रोगों से मनुष्य मुक्त हो जाता है। *भगवद्गीता* में भी इसका उल्लेख है। भक्तिमय जीवन प्रारम्भ होते ही हमें भगवत्प्रेम का पूरा-पूरा फल प्राप्त हो जाता है। भगवत्-प्रसाद अर्थात् ईश्वरीय कृपा की सर्वोच्च सिद्धि कृष्ण का प्रेम है। यह दिव्य उपलब्धि इतनी मूल्यवान है कि कोई भौतिक सुख इसकी तुलना नहीं कर सकता। प्रबोधानन्द सरस्वती ने कहा है कि यदि किसी को भगवान् चैतन्य का अनुग्रह प्राप्त हो जाय तो वह इतना महान् बन जाता है कि वह देवताओं की परवाह नहीं करता, अद्वैतवाद को नरक तुल्य मानता है और इन्द्रियों को वश में करना उसके लिए अत्यन्त सरल कार्य है। स्वर्गिक आनन्द कथा-कहानियों से अधिक कुछ नहीं लगता। वस्तुतः भौतिक सुख तथा दिव्य सुख की कोई तुलना ही नहीं है।

कर्म मुनि के अनुग्रह से देवहूति को मात्र सेवा करने से वास्तविक बोध हो गया। ऐसा ही उदाहरण हमें नारद मुनि के जीवन में प्राप्त होता है। अपने पूर्वजन्म में वे दासी के पुत्र थे, किन्तु उनकी माता परम भक्तों की सेवा में लगी रहती थी। उसे इन भक्तों की सेवा करने का अवसर मिला और वे उनका जूठन खाकर तथा उनकी आज्ञा का पालन करके ही अगले जन्म में इतने महान् बन सके। आध्यात्मिक उन्नति के लिए सबसे सुगम मार्ग है कि प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण की जाय और मनोयोग से उसकी सेवा की जाय। सफलता का यही रहस्य है। जैसाकि विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गुरु की प्रार्थना में कहा है—*यस्य प्रसादाद्-भगवत्-*

प्रसादः—गुरु की सेवा करने या उनकी कृपा के प्रसाद से मनुष्य को परमेश्वर की कृपा प्राप्त होती है। अपने भक्त पति कर्दम की सेवा करके देवहूति उनकी उपलब्धियों में साझेदार बनी। इसी प्रकार एकनिष्ठ शिष्य प्रामाणिक गुरु की सेवा करके एकसाथ भगवान् तथा गुरु की कृपा प्राप्त कर सकता है।

अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भ-
विभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ।
सिद्धासि भुङ्क्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्
दिव्यान्नरैर्दुरधिगान् नृपविक्रियाभिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्य; पुनः—फिर; भगवतः—भगवान् की; भ्रुवः—भुकुटी के; उद्विजृम्भ—हिलने से; विभ्रंशित—नष्ट; अर्थ-रचनाः—भौतिक उपलब्धियों (भोग) के; किम्—क्या लाभ; उरुक्रमस्य—भगवान् विष्णु का; सिद्धा—सफल; असि—तुम हो; भुङ्क्ष्व—भोगो; विभवान्—भेंटें; निज-धर्म—अपनी भक्ति से; दोहान्—प्राप्त; दिव्यान्—दिव्य; नरैः—पुरुषों द्वारा; दुरधिगान्—दुर्लभ; नृप-विक्रियाभिः—राजमद से गर्वित।

कर्दम मुनि ने कहा—भगवान् की कृपा के अतिरिक्त अन्य भोगों से कौन सा लाभ है? सभी भौतिक उपलब्धियाँ श्रीभगवान् विष्णु के भुकुटि-चालन से ही ध्वंस हो जाने वाली हैं। तुमने अपने पति की भक्ति करके वे दिव्य भेंटें प्राप्त की हैं और उनका भोग कर रही हो जो राजमद तथा भौतिक सम्पत्ति से गर्वित मनुष्यों के लिए भी दुर्लभ हैं।

तात्पर्य : भगवान् चैतन्य ने बतलाया है कि मानव जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि भगवत्कृपा या ईश्वर-प्रेम है। उनका कथन है—प्रेमा पुमर्थो महान्—ईश्वर का प्रेम प्राप्त करना जीवन की महान् सिद्धि है। इसी सिद्धि की संस्तुति कर्दम मुनि ने अपनी पत्नी के लिए की है। उनकी पत्नी एक सुसम्पन्न राजसी परिवार की थी। सामान्यतः जो भौतिकतावादी हैं या सम्पत्तिवान तथा ऐश्वर्यवान हैं, वे भगवान् के दिव्य प्रेम को नहीं पहचान पाते। यद्यपि देवहूति का सम्बन्ध महान् राज-कुल से था, किन्तु सौभाग्यवश वह अपने महान् पति कर्दम मुनि के अधीक्षण में थी, जिन्होंने उसे मनुष्य जीवन में प्राप्त होने वाली सर्वोत्तम भेंट—भगवत्कृपा या ईश्वर प्रेम—प्रदान की। देवहूति को यह भगवत्कृपा अपने पति की सद्भावना एवं संतोष के कारण प्राप्त हुई। उसने अपने पति की सेवा की जो एक परम भक्त एवं साधु पुरुष थे और

निष्ठा, प्रेम, वात्सल्य तथा सेवा से परिपूर्ण थे। कर्दम मुनि अत्यन्त संतुष्ट हो गये। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक ईश्वर-प्रेम प्रदान किया और पत्नी से कहा कि इसका भोग करो, क्योंकि यह उसे पहले ही प्राप्त हो चुका है।

ईश्वर का प्रेम कोई सामान्य वस्तु नहीं। रूप गोस्वामी चैतन्य महाप्रभु की पूजा करते थे, क्योंकि वे सबों को ईश्वर का प्रेम—कृष्णप्रेम—वितरित करते थे। रूप गोस्वामी उन्हें महावदान्य कह कर उनकी प्रशंसा करते थे, क्योंकि वे सबों को मुक्तहस्त कृष्ण-प्रेम वितरित कर रहे थे, जो ज्ञानियों को अनेक जन्मों में कठिनाई से प्राप्त होता है। कृष्णप्रेम अर्थात् कृष्णभावनामृत सर्वोच्च भेंट है, जिसे हम हर किसी को प्रदान कर सकते हैं जिससे हम प्रेम करते हैं।

इस श्लोक में आगत *निज-धर्म-दोहान्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। देवहूति को कर्दम मुनि की पत्नी होने के कारण अपने पति से अमूल्य भेंट प्राप्त हुई, क्योंकि वह अपने पति के प्रति अत्यन्त निष्ठावान थी। स्त्री का सबसे बड़ा धर्म है कि अपने पति के प्रति निष्ठावान रहे। यदि सौभाग्य से पति महापुरुष हो तो जोड़ी अत्यन्त पूर्ण होती है और पति तथा पत्नी दोनों का जीवन तुरन्त परिपूर्ण हो जाता है।

एवं ब्रुवाणमबलाखिलयोगमाया-

विद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ।

सम्प्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्-

व्रीडावलोकविलसद्भसिताननाह ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; ब्रुवाणम्—बोलते हुए; अबला—स्त्री; अखिल—सम्पूर्ण; योग-माया—दिव्य ज्ञान का; विद्या-विचक्षणम्—ज्ञान में अद्वितीय; अवेक्ष्य—सुनकर; गत-आधि:—सन्तुष्ट; आसीत्—हो गई; सम्प्रश्रय—विनय के साथ; प्रणय—तथा प्रेम से; विह्वलया—विह्वल होकर; गिरा—वाणी से; ईषत्—कुछ-कुछ; व्रीडा—लज्जा, संकोच; अवलोक—चितवन से; विलसत्—चमकती; हसित—हँसती; आनना—मुख वाली; आह—बोली।

समस्त प्रकार के दिव्य ज्ञान में अद्वितीय, अपने पति को बोलते हुए सुनकर निष्पाप देवहूति अत्यन्त प्रसन्न हुई, उसका मुख किंचित् संकोच भरी चितवन और मधुर मुस्कान से खिल उठा और वह अत्यन्त विनय एवं प्रेमवश गद्गद वाणी में (रुद्ध कण्ठ से)

बोली।

तात्पर्य : कहा जाता है कि यदि कोई कृष्ण भावनामृत में लगा हुआ हो और भगवान् की दिव्य प्रेम-पूर्ण सेवा कर रहा हो तो यह कहा जा सकता है कि उसने तप, धर्म, यज्ञ, योग तथा ध्यान के निमित्त संस्तुत सभी अभ्यास प्राप्त कर लिया है। देवहूति का पति दिव्य ज्ञान में इतना दक्ष था कि उसके विषय में तर्क करने की आवश्यकता नहीं रह गई, अतः जब उसने उन्हें बोलते हुए सुना तो उसे विश्वास हो गया कि वे समस्त दिव्य विद्याओं में प्रवीण हो चुके हैं। उसे अपने पति द्वारा प्रदत्त भेंट पर कोई सन्देह नहीं रहा और जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वे उसे सर्वोच्च भेंट देने जा रहे हैं, तो वह अत्यधिक प्रसन्न हुई। वह प्रेमभाव से अभिभूत हो गई, अतः वह उत्तर न दे पाई; तब रुद्ध वाणी में उसने परम रूपवती पत्नी की भाँति निम्नलिखित शब्द कहे।

देवहूतिरुवाच

राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोग-

मायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ।

यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदङ्गसङ्गे

भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

देवहूतिः उवाच—देवहूति ने कहा; राद्धम्—प्राप्त हुआ; बत—निस्सन्देह; द्विज-वृष—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ; एतत्—यह; अमोघ—अचूक; योग-माया—योगशक्ति के; अधिपे—स्वामी; त्वयि—तुम में; विभो—हे महान्; तत्—वह; अवैमि—मैं जानती हूँ; भर्तः—हे पति; यः—जो; ते—तुम्हारे द्वारा; अभ्यधायि—दिया गया; समयः—वचन, प्रतिज्ञा; सकृत्—एक बार; अङ्ग-सङ्गः—शारीरिक संयोग; भूयात्—होवे; गरीयसि—जब अत्यन्त यशस्वी; गुणः—सद्गुण; प्रसवः—सन्तान; सतीनाम्—पतिव्रता स्त्रियों का।

श्री देवहूति ने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, मेरे प्रिय पति, मैं जानती हूँ कि आपने सिद्धि प्राप्त कर ली है और समस्त अचूक योगशक्ति के स्वामी हैं, क्योंकि आप दिव्य प्रकृति योगमाया के संरक्षण में हैं। किन्तु आपने एक बार वचन दिया था कि अब हमारा शारीरिक संसर्ग होना चाहिए, क्योंकि तेजस्वी पति वाली साध्वी पत्नी के लिए सन्तान बहुत बड़ा गुण है।

तात्पर्य : देवहूति ने अपनी प्रसन्नता बत शब्द द्वारा व्यक्त की, क्योंकि वह जानती थी कि उसके पति अति उच्च दिव्य पद पर योगमाया की शरण में थे। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है कि महात्मा भौतिक शक्ति के वश में नहीं रहते। परमेश्वर की दो शक्तियाँ हैं— भौतिक तथा आत्मिक। जीवात्माएँ तटस्था शक्ति हैं। तटस्था शक्ति के अन्तर्गत मनुष्य भौतिक शक्ति या फिर आत्मिक शक्ति (योगमाया) के वश में होते हैं। कर्दम मुनि महात्मा थे, अतः वे योगमाया के वश में थे जिसका अर्थ है कि वे प्रत्यक्षतः परमेश्वर से सम्बन्धित थे। इसका लक्षण है कृष्णभावनामृत या निरन्तर भक्ति में लगे रहना। यह देवहूति को ज्ञात था, तो भी वह मुनि के शारीरिक संयोग (संभोग) से पुत्र-प्राप्ति चाहती थी। अतः उसने अपने माता-पिता को दिये गये वचन की याद दिलाई, “मैं देवहूति के गर्भधारण काल तक रहूँगा।” उसने याद दिलाई कि महापुरुष से सन्तान-लाभ करना साध्वी स्त्री के लिए अत्यन्त गौरवास्पद है। वह गर्भधारण करना चाहती थी, अतः उसके लिए विनती की। स्त्री शब्द का अर्थ है “विस्तार।” पति तथा पत्नी के कायिक संयोग से उनके गुणों का विस्तार होता है; अच्छे माता-पिता से उत्पन्न संतानें उनके व्यक्तिगत गुणों के ही विस्तार होती हैं। कर्दम मुनि तथा देवहूति दोनों को आत्मिक प्रकाश प्राप्त था, अतः देवहूति शुरू से ही चाह रही थी कि पहले वह गर्भ धारण करे तब उसे भगवत्कृपा तथा भगवत्प्रेम प्राप्त हो। स्त्री की सबसे बड़ी अभिलाषा यही होती है कि उसे पति के ही समान योग्य पुत्र की प्राप्ति हो। चूँकि उसे पति रूप में कर्दम मुनि प्राप्त थे, अतः वह संभोग द्वारा पुत्र के लिए इच्छुक थी।

तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं

येनैष मे कर्षितोऽतिरिंसयात्मा ।

सिद्ध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया

दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तत्र—उसमें; इति-कृत्यम्—जो करणीय था; उपशिक्ष—सम्पन्न करो; यथा—के अनुसार; उपदेशम्—शास्त्रों के उपदेश; येन—जिससे; एषः—यह; मे—मेरा; कर्षितः—क्षीण; अतिरिंसया—तीव्र कामेच्छा के तुष्ट न होने से; आत्मा—शरीर; सिद्ध्येत—उपयुक्त बन सकता है; ते—तुम्हारे लिए; कृत—उत्तेजित; मनः-भव—कामेच्छा से;

धर्षितायाः—पीड़ित; दीनः—दीन; तत्—अतः; ईश—हे भगवान्; भवनम्—घर; सद्यश्म्—उपयुक्त; विचक्ष्व—के विषय में सोचो।

देवहूति ने आगे कहा—हे प्रभु, मैं कामवेदना से पीड़ित हो रही हूँ। अतः आप शास्त्रों के अनुसार जो भी व्यवस्था की जानी हो, करें जिससे कामेच्छा सन्तुष्ट न हो पाने से यह मेरा दुर्बल शरीर आपके योग्य हो जाय। हाँ, स्वामी, इस कार्य के लिए उपयुक्त घर के विषय में भी विचार करें।

तात्पर्य : वैदिक साहित्य केवल शिक्षाओं से ही पूर्ण नहीं है, अपितु सिद्धि प्राप्त करने के उद्देश्य से भौतिक अस्तित्व के लिए करणीय के विषय में भी सहायक है। अतः देवहूति ने अपने पति से पूछा कि वैदिक शिक्षाओं के अनुसार विषयी जीवन के लिए वह किस प्रकार अपने को तैयार करे। विषयी जीवन का मुख्य उद्देश्य अच्छी सन्तान उत्पन्न करना है। अच्छी सन्तान उत्पन्न करने की परिस्थितियों का वर्णन कामशास्त्र में प्राप्त है। शास्त्रों में जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, सब कुछ वर्णित है—कैसा घर हो, कैसी सजावट हो, पत्नी कैसा वस्त्र धारण करे, किस प्रकार उबटन, सुगंधि लगाए तथा अन्य हाव-भाव बनाए। ऐसा करने से पति उसकी सुन्दरता से आकृष्ट होगा और उपयुक्त मानसिक स्थिति तैयार हो सकेगी। तब संभोग-काल की यह मानसिक स्थिति पत्नी के गर्भ में स्थानान्तरित हो सकेगी और उस गर्भधारण से अच्छी सन्तान उत्पन्न हो सकती है। यहाँ पर देवहूति के शारीरिक वैशिष्ट्य का विशेष उल्लेख है। वह अत्यन्त कृशकाय हो गई थी, अतः उसे भय था कि हो सकता है, वह कर्दम को आकर्षक न लगे। वह जानना चाहती थी कि पति को आकर्षित करने के लिए शरीर को किस तरह सुधारे। जब संभोग काल में पति आकृष्ट होता है, तो पुत्र उत्पन्न हो सकता है, किन्तु जब पति पर पत्नी आकृष्ट होती है, तो कन्या उत्पन्न हो सकती है। इसका उल्लेख आयुर्वेद में है। जब स्त्री की कामेच्छा प्रबल होती है, तो कन्या के उत्पन्न होने की और जब पुरुष की कामेच्छा प्रबल हो तो पुत्र उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। देवहूति काम-शास्त्र में वर्णित व्यवस्था के अनुसार अपने पति की कामेच्छा को प्रबल बनाना चाह रही थी। वह ऐसी ही शिक्षा चाह रही थी। साथ ही उसने विनय की कि एक उपयुक्त घर की भी व्यवस्था हो,

क्योंकि जिस कुटी में कर्दम मुनि रह रहे थे वह अत्यन्त सादी और सत्त्वगुण से युक्त थी जिसमें कामेच्छा के उत्पन्न होने की सम्भावना कम थी।

मैत्रेय उवाच

प्रियायाः प्रियमन्विच्छन्कर्दमो योगमास्थितः ।

विमानं कामगं क्षत्तस्तर्हीवाविरचीकरत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः—मैत्रेय मुनि ने; उवाच—कहा; प्रियायाः—अपनी प्रिय पत्नी की; प्रियम्—इच्छा, चाह; अन्विच्छन्—खोजते हुए; कर्दमः—कर्दम मुनि ने; योगम्—योगशक्ति; आस्थितः—प्रयोग किया; विमानम्—विमान; काम-गम्—इच्छानुसार चलने वाला; क्षत्तः—हे विदुर; तर्ही—तुरन्त; एव—ही; आविरचीकरत्—उत्पन्न किया।

मैत्रेय ने आगे कहा—हे विदुर, अपनी प्रिया की इच्छा को पूरा करने के लिए कर्दम मुनि ने अपनी योगशक्ति का प्रयोग किया और तुरन्त ही एक हवाई महल (विमान) उत्पन्न कर दिया जो उनकी इच्छानुसार यात्रा कर सकता था।

तात्पर्य : यहाँ पर योगम् आस्थितः शब्द महत्त्वपूर्ण है। कर्दम मुनि योग में पूर्णतया सिद्ध थे। योगाभ्यास के फलस्वरूप आठ प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं—योगी लघुतम से भी लघु, गुरुतम से भी गुरु एवं अत्यन्त हल्का हो सकता है। वह इच्छानुसार जो भी चाहे प्राप्त कर सकता है, चाहे तो लोक की सृष्टि कर दे, किसी पर भी अपना प्रभाव डाल दे इत्यादि। इस प्रकार योगसिद्धि प्राप्त की जाती है और इसी के बाद आत्म-जीवन की सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार अपनी इच्छानुसार अपनी प्राणप्रिया की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए वायु में प्रासाद खड़ा कर देना कर्दम मुनि के लिए कोई आश्चर्य की बात न थी। अतः उन्होंने तुरन्त ही प्रासाद (महल) उत्पन्न कर दिया, जिसका वर्णन अगले श्लोकों में हुआ है।

सर्वकामदुग्धं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ।

सर्वद्भ्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सर्व—समस्त; काम—इच्छाएँ; दुग्धम्—प्रदायक; दिव्यम्—आश्चर्यमय; सर्व-रत्न—सभी प्रकार की मणियों; समन्वितम्—से जटित; सर्व—समस्त; ऋद्धि—सम्पत्ति की; उपचय—वृद्धि; उदर्कम्—क्रमिक; मणि—बहुमूल्य रत्नों के; स्तम्भैः—ख भों से; उपस्कृतम्—सुशोभित।

यह सभी प्रकार के रत्नों से जटित, बहुमूल्य मणियों के ख भों से सुशोभित तथा

इच्छित फल प्रदान करने वाली विस्मयजनक संरचना (महल) थी। यह सभी प्रकार के साज-सामान तथा सम्पदा से सुसज्जित था, जो दिन-प्रति-दिन बढ़ने वाले थे।

तात्पर्य : कर्दम मुनि द्वारा सृजित प्रासाद “हवाई किला” कहा जा सकता है, किन्तु उन्होंने अपनी योगशक्ति से सचमुच वायु में बहुत बड़ा प्रासाद खड़ा कर दिया था। हम लोगों की कल्पना में हवाई किला असम्भव है, किन्तु यदि हम ठीक से विचार करें तो ऐसा असम्भव नहीं है। यदि श्रीभगवान् अनेक लोकों की सृष्टि कर सकते हैं, जो लाख-लाख हवाई किलों का वहन करते रहते हैं, तो क्या कर्दम जैसे सिद्ध योगी के लिए हवा में एक किला बनाना कठिन है? इस किले को सर्वकामदुघम् अर्थात् “इच्छित वस्तु को देने वाला” कहा गया है। यह मणियों से पूर्ण था। यहाँ तक कि इसमें ख भे भी मोती तथा अन्य बहुमूल्य पत्थरों से बने थे। ये अमूल्य मणि तथा रत्न कभी क्षय होने वाले न थे, वरन् नित्यप्रति इनकी कान्ति बढ़ने वाली थी। हमने इस पृथ्वी पर भी ऐसे प्रासादों के बारे में सुना है। भगवान् श्रीकृष्ण ने सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों के लिए जो प्रासाद बनाये थे वे मणियों से जटित थे जिससे रात्रि में प्रकाश की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी।

दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् ।

पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलङ्कितम् ॥ १४ ॥

स्त्रिभिविचित्रमाल्याभिर्मञ्जुशिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ।

दुकूलक्षौमकौशैर्यैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

दिव्य—विचित्र; उपकरण—सामग्री से; उपेतम्—युक्त; सर्व—काल—सभी ऋतुओं में; सुख-आवहम्—सुखदायक; पट्टिकाभिः—बन्दनवारों से; पताकाभिः—पताकाओं से; विचित्राभिः—विभिन्न रंगों तथा धागों से; अलङ्कितम्—सज्जित; स्त्रिभिः—हारों से; विचित्र-माल्याभिः—आकर्षक पुष्पों से; मञ्जु—मधुर; शिञ्जत्—गुंजार करता; षट्-अङ्घ्रिभिः—भारों से; दुकूल—महीन वस्त्र; क्षौम—लिनन; कौशैर्यैः—रेशमी वस्त्र से; नाना—विविध; वस्त्रैः—पर्दों से; विराजितम्—शोभायमान।

यह प्रासाद (दुर्ग) सभी प्रकार की सामग्री से सुसज्जित था और यह सभी ऋतुओं में सुखदायक था। यह चारों ओर से पताकाओं, बन्दनवारों तथा नाना-विधिक रंगों की कला-कृतियों से सजाया गया था। यह आकर्षक पुष्पों के हारों से, जिससे मधुर गुंजार

करते भौरै आकृष्ट हो रहे थे तथा लिननेन, रेशमी तथा अन्य तन्तुओं से बने पर्दों से शोभायमान था।

उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक्पृथक् ।

क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

उपरि उपरि—एक के ऊपर एक; विन्यस्त—रखे हुए; निलयेषु—मंजिलों में; पृथक् पृथक्—अलग अलग; क्षिप्तैः—व्यवस्थित; कशिपुभिः—बिस्तरे (शय्या) से; कान्तम्—कमनीय; पर्यङ्क—पलंग; व्यजन—पंखे; आसनैः—आसनों (बैठने के स्थान, सीट) सहित।

यह प्रासाद शय्याओं, पलंगों, पंखों तथा आसनों से युक्त सात पृथक्-पृथक् मंजिलों (तल्लों) वाला होने से अत्यन्त मनोहर लग रहा था।

तात्पर्य : इस श्लोक से पता चलता है कि प्रासाद में कई मंजिलें थीं। उपरि उपरि विन्यस्त शब्द सूचित करते हैं कि गगनचुम्बी भवन नये ईजाद नहीं हैं। उन दिनों लाखों वर्ष पूर्व भी कई मंजिलो के मकान बनाने का प्रचलन था। उनमें एक या दो कमरे नहीं थे वरन् अनेक खण्ड होते थे और प्रत्येक कुशन, गद्दों, कुर्सियों, गलीचों से सज्जित होते थे।

तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् ।

महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तत्र तत्र—जहाँ तहाँ; विनिक्षिप्त—रखे हुए; नाना—विविध; शिल्प—कला-कृतियों से; उपशोभितम्—अत्यधिक सुन्दर; महा-मरकत—विशाल मरकत (पन्ना) के; स्थल्या—फर्श से; जुष्टम्—सुसज्जित; विद्रुम—मूँगे के; वेदिभिः—उठे हुए (ऊँचे) चबूतरों से।

दीवालों में जहाँ तहाँ कलापूर्ण संरचना होने से उनकी सुन्दरता बढ़ गई थी। उसकी फर्श मरकत मणि की थी और चबूतरे मूँगे के बने थे।

तात्पर्य : आजकल के मनुष्य को स्थापत्यकला पर गर्व है फिर भी फर्शें सामान्यतः रंगीन सीमेंट से बनी रहती हैं। किन्तु कर्दममुनि ने योगशक्ति से जिस प्रासाद का निर्माण किया था उसकी फर्श पन्ने की थी और चबूतरे मूँगे के थे।

द्वाःसु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् ।
शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैरधिश्रितम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

द्वाःसु—द्वारों पर; विद्रुम—मूँगे की; देहल्या—देहली से युक्त; भातम्—सुन्दर; वज्र—हीरों से जटित; कपाट-वत्—
दरवाजों से युक्त; शिखरेषु—गुम्बदों पर; इन्द्र-नीलेषु—इन्द्र नीलमणि के; हेम-कुम्भैः—सोने के कलशों से युक्त;
अधिश्रितम्—रखे हुए।

वह महल अतीव सुन्दर था, उसके द्वारों की देहलियाँ मूँगे की थीं और दरवाजे हीरों
से जटित थे। इन्द्र नीलमणि के बने गुम्बदों पर सोने के कलश रखे हुए थे।

चक्षुष्मत्पद्मरागाच्छयैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः ।
जुष्टं विचित्रवैतानैर्महाहैर्हेमतोरणैः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

चक्षुः-मत्—मानो आँखों से युक्त हो; पद्म-राग—लालमणि, माणिक; अछयैः—चुने हुए; वज्र—हीरे की; भित्तिषु—
दीवालों पर; निर्मितैः—जड़े हुए; जुष्टम्—सुसज्जित; विचित्र—तरह तरह के; वैतानैः—वितानों (चँदोवों) से; महा-
अहैः—अत्यन्त बहुमूल्य; हेम-तोरणैः—सोने के तोरणों (द्वारों) से।

वह हीरों की दीवालों में जड़े हुए मनभावने माणिक से ऐसा प्रतीत होता था मानो
नेत्रों से युक्त हो। वह विचित्र चँदोवों और अत्यधिक मूल्यवान सोने के तोरणों से
सुसज्जित था।

तात्पर्य : ऐसे कलापूर्ण आभूषण और सजावट, जिससे आँखों जैसी आकृति प्रकट हो,
काल्पनिक नहीं हैं। यहाँ तक कि अर्वाचीन वर्षों में मुगल सम्राटों ने बहुमूल्य हीरे-मोतियों की
पच्चीकारी वाले पक्षी, जिनके नेत्र बहुमूल्य प्रस्तरों के बने थे, निर्मित कराये थे। यद्यपि
अधिकारियों ने इन प्रस्तरों को निकाल लिया है, किन्तु तो भी नई दिल्ली के मुगल सम्राटों द्वारा
निर्मित किलों में पच्चीकारी अब भी विद्यमान है। शाही महलों का निर्माण मणियों तथा नेत्र के
समान दुर्लभ पत्थरों से हुआ था कि इस प्रकार इनसे रात्रि के समय प्रकाश फेंक सकें और
दीपकों की आवश्यकता नहीं रहेगी।

हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् ।
कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥ २० ॥

शब्दार्थ

हंस—हंसों के; पारावत—कबूतरों के; ब्रातैः—झुंड के झुंड से; तत्र तत्र—इधर उधर; निकूजितम्—शोर करते; कृत्रिमान्—कृत्रिम; मन्यमानैः—सोचते हुए; स्वान्—अपनी तरह के; अधिरुह्य अधिरुह्य—बार-बार उड़कर; च—तथा ।

उस प्रासाद में जहाँ तहाँ जीवित हंसों तथा कबूतरों के साथ ही कृत्रिम हंस तथा कबूतर इतने सजीव थे कि असली हंस उन्हें अपने ही तुल्य सजीव पक्षी समझ कर अपनी गर्दनें ऊपर उठा रहे थे। इस प्रकार वह प्रासाद इन पक्षियों के ध्वनियों से गूँज रहा था।

विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः ।

यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

विहार-स्थान—क्रीड़ा-स्थल; विश्राम—आराम करने के कक्ष; संवेश—शयनगृह; प्राङ्गण—आँगन; अजिरैः—बाहरी खुला स्थान, चौक; यथा-उपजोषम्—सुविधानुसार; रचितैः—निर्मित; विस्मापनम्—विस्मय उत्पन्न करने वाले; इव—निस्सन्देह; आत्मनः—स्वयं (कर्दम द्वारा)।

उस प्रासाद में क्रीड़ास्थल, विश्रामघर, शयनगृह, आँगन तथा चौकें थीं जो नेत्रों को सुख देने वाली थीं। इन सबसे स्वयं मुनि को विस्मय हो रहा था।

तात्पर्य : साधु-संत पुरुष होने के कारण कर्दम मुनि एक सादी झोपड़ी में रह रहे थे, अतः जब उन्होंने अपनी योगशक्ति से निर्मित प्रासाद को देखा जिसमें विश्रामगृह, काम-क्रीड़ा के कक्ष तथा भीतरी एवं बाहरी आँगन थे, तो वे स्वयं विस्मित हुए। देव-तुल्य पुरुष का यही ढंग है। कर्दम मुनि जैसे भक्त ने अपनी पत्नी की विनती पर अपनी योगशक्ति से जितना ऐश्वर्य प्रदर्शित किया उस पर स्वयं उन्हें आश्चर्य हो रहा था। जब योगी की शक्ति प्रदर्शित होती है, तो कभी-कभी योगी स्वयं विस्मित हो जाता है।

ईदृग्गृहं तत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा ।

सर्वभूताशयाभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ईदृक्—ऐसे; गृहम्—घर को; तत्—वह; पश्यन्तीम्—देखती हुई; न अतिप्रीतेन—अधिक प्रसन्न नहीं हुई; चेतसा—हृदय से; सर्व-भूत—प्रत्येक प्राणी के; आशय-अभिज्ञः—हृदय को जानते हुए; प्रावोचत्—सम्बोधित किया; कर्दमः—कर्दम ने; स्वयम्—स्वयं।

जब उन्होंने देखा कि देवहूति इतने विशाल, ऐश्वर्ययुक्त प्रासाद (भवन) को अप्रसन्न हृदय से देख रही है, तो कर्दम मुनि को उसकी भावनाओं का पता चला, क्योंकि वे

किसी के हृदय की बात जान सकते थे। अतः उन्होंने अपनी पत्नी को स्वयं ही इस प्रकार सम्बोधित किया।

तात्पर्य : देवहूति ने अपने देह की परवाह किये बिना कुटी में ही दीर्घकाल बिताया था। वह धूल-धूसरित थी और उसके वस्त्र भी बहुत अच्छे न थे। कर्दम मुनि को आश्चर्य हो रहा था कि उन्होंने ऐसा प्रसाद कैसे निर्मित कर दिया और उनकी पत्नी देवहूति भी उसी तरह विस्मित थी। वह भला ऐसे प्रसाद में कैसे रहती? कर्दम मुनि को उसके आश्चर्य का पता चल गया इसीलिए वे इस प्रकार बोले।

निमज्ज्यास्मिन्हृदे भीरु विमानमिदमारुह ।

इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

निमज्ज्य—स्नान करके; अस्मिन्—इसमें; हृदे—सरोवर में; भीरु—अरे डरपोक; विमानम्—विमान में; इदम्—इस; आरुह—चढ़ जाओ; इदम्—यह; शुक्ल-कृतम्—भगवान् विष्णु द्वारा निर्मित; तीर्थम्—पवित्र सरोवर; आशिषाम्—इच्छाओं को; यापकम्—देते हुए; नृणाम्—मनुष्यों की।

प्रिये देवहूति, तुम इतनी भयभीत क्यों हो? पहले स्वयं भगवान् विष्णु द्वारा निर्मित बिन्दु-सरोवर में स्नान करो, जो मनुष्य की समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाला है और तब इस विमान पर चढ़ो।

तात्पर्य : आज भी तीर्थस्थानों में जाकर वहाँ जल में स्नान करने की प्रथा है। वृन्दावन में लोग यमुना नदी में स्नान करते हैं। अन्य स्थानों में भी, यथा प्रयाग में लोग गंगा नदी में स्नान करते हैं। तीर्थम् आशिषां यापकम् शब्द तीर्थस्थानों में स्नान करने से मनोवांछित फल प्राप्त होने का संकेत करते हैं। कर्दम मुनि ने अपनी पत्नी को बिन्दु-सरोवर में स्नान करने के लिए कहा जिससे वह अपना पूर्व शारीरिक सौन्दर्य तथा कान्ति प्राप्त कर सके।

सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा ।

सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; तत्—तब; भर्तुः—अपने पति का; समादाय—स्वीकार करके; वचः—शब्द; कुवलय-ईक्षणा—कमल के समान नेत्र वाली; स-रजम्—मैली-कुचैली; बिभ्रती—पहने हुए; वासः—वस्त्र; वेणी-भूतान्—जटा तुल्य लटें; च—तथा; मूर्ध-जान्—बाल।

कमललोचना देवहूति ने अपने पति की आज्ञा मान ली। मैले-कुचैले वस्त्रों तथा सिर पर बालों के जटों के कारण वह आकर्षक नहीं दिख रही थी।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि देवहूति के बाल वर्षों से सँवारे नहीं गये थे जिससे उसमें जटें पड़ गई थीं। कहने का तात्पर्य यह कि अपने पति की सेवा में व्यस्त रहने के कारण उसने अपने शारीरिक वस्त्र तथा सुख-सुविधा की तनिक परवाह नहीं की थी।

अङ्गं च मलपङ्केन सञ्छन्नं शबलस्तनम् ।

आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अङ्गम्—शरीर; च—तथा; मल-पङ्केन—धूल से; सञ्छन्नम्—ढकी; शबल—विवर्ण, कान्तिहीन; स्तनम्—वक्षस्थल; आविवेश—प्रवेश किया; सरस्वत्याः—सरस्वती नदी के; सरः—सरोवर झील; शिव—पवित्र; जल—जल; आशयम्—युक्त।

उसके शरीर पर धूल की मोटी पर्त चढ़ी थी और उसके स्तन कान्तिहीन हो गये थे।

किन्तु उसने सरस्वती नदी के पवित्र जल से भरे सरोवर में डुबकी लगाई।

सान्तः सरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः ।

सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धयः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सा—उसने; अन्तः—भीतर; सरसि—सरोवर में; वेश्म-स्थाः—घर में स्थित; शतानि दश—एक हजार; कन्यकाः—कन्याएँ; सर्वाः—समस्त; किशोर-वयसः—किशोर अवस्था की; ददर्श—देखा; उत्पल—कमलों के समान; गन्धयः—सुगन्धित।

उसने सरोवर के भीतर एक घर में एक हजार कन्याएँ देखीं जो सब की सब अपनी किशोरावस्था में थीं और कमलों के समान सुगन्धित थीं।

तां दृष्ट्वा सहस्रोत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः ।

वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; दृष्ट्वा—देखकर; सहसा—एकाएक; उत्थाय—उठकर; प्रोचुः—उन्होंने कहा; प्राञ्जलयः—हाथ जोड़े; स्त्रियः—स्त्रियाँ; वयम्—हम; कर्म-करीः—दासियाँ; तुभ्यम्—तुम्हारे लिए; शाधि—कृपा करके कहो; नः—हमको; करवाम—हम कर सकती हैं; किम्—क्या।

उसे देखकर वे तरुणियाँ सहसा उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़कर कहा, “हम आपकी दासी हैं। कृपा करके बताएँ कि हम आपके लिए क्या करें?”

तात्पर्य : जब उस बड़े प्रासाद में मैले वस्त्र पहने देवहूति सोच रही थी कि वह क्या करे तो कर्दम मुनि ने अपनी योगशक्ति से एक हजार दासियाँ सेवा करने के लिए उत्पन्न कर दीं। वे जल के भीतर देवहूति के समक्ष प्रकट हुईं और दासियों के रूप में आज्ञा के लिए प्रतीक्षा करने लगीं।

स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् ।
दुकूले निर्मले नूले ददुरस्यै च मानदाः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

स्नानेन—नहाने के तेल से; ताम्—उसको; महा-अर्हेण—बहुमूल्य; स्नापयित्वा—स्नान कराकर; मनस्विनीम्—सच्चरित्र पत्नी को; दुकूले—सुन्दर वस्त्र में; निर्मले—स्वच्छ; नूले—नवीन; ददुः—दिया; अस्यै—उसको; च—तथा; मान-दाः—सम्मान करने वाली।

देवहूति के प्रति अत्यन्त सम्मान प्रदर्शित करने वाली कन्याएँ उसे बाहर लाईं और बहुमूल्य तेलों तथा उबटनों को लगाकर नहलाया और उसे महीन, निर्मल, नये वस्त्र पहनने को दिये।

भूषणानि परार्थ्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च ।
अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

भूषणानि—आभूषण; पर-अर्थांनि—अत्यन्त मूल्यवान्; वरीयांसि—श्रेष्ठ; द्युमन्ति—चमकीले; च—तथा; अन्नम्—भोजन; सर्व-गुण—समस्त सदगुण; उपेतम्—से युक्त; पानम्—पेय पदार्थ; च—तथा; एव—भी; अमृत—मधुर; आसवम्—मादक।

तब उन्होंने उसे उत्तम तथा बहुमूल्य आभूषणों से सजाया जो चमचमा रहे थे। फिर उन्होंने सर्वगुण सम्पन्न भोजन तथा मधुर मादक पेय पदार्थ आसवम् प्रदान किया।

तात्पर्य : आसव एक आयुर्वेदिक भेषज है, यह मद्य नहीं है। यह विशेष प्रकार की औषधियों से तैयार किया जाता है और स्वस्थ रहने, पाचन आदि सुधारने के लिए होता है।

अथादर्शं स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजाम्बरम् ।

विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; आदर्श—दर्पण में; स्वम् आत्मानम्—अपने प्रतिबिम्ब को; स्रक्-विणम्—माला से सजी; विरज—निर्मल; अम्बरम्—वस्त्र; विरजम्—मलरहित; कृत-स्वस्ति-अयनम्—शुभ-चिह्नों से अलंकृत; कन्याभिः—दासियों द्वारा; बहु-मानितम्—अत्यन्त आदरपूर्वक सेवित ।

तब उसने दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखा। उसका शरीर समस्त प्रकार के मल से रहित हो गया था और वह माला से सज्जित की गई थी। वह निर्मल वस्त्र पहने थी और शुभ तिलक से विभूषित थी। दासियाँ उसकी अत्यन्त आदरपूर्वक सेवा कर रही थीं।

स्नातं कृतशिरःस्नानं सर्वाभरणभूषितम् ।

निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

स्नातम्—स्नान किये; कृत-शिरः—सिर सहित; स्नानम्—नहाते हुए; सर्व—सर्वत्र; आभरण—आभूषणों से; भूषितम्—अलंकृत; निष्क—लटकन से युक्त सोने का गले का हार; ग्रीवम्—गर्दन में; वलयिनम्—चूड़ियों से; कूजत्—ध्वनि करते; काञ्चन—सोने के बने; नूपुरम्—पायल ।

सिर सहित उसका सारा शरीर नहलाया गया और उसके अंग-प्रत्यंग को आभूषणों से सजाया गया। उसने लटकन से युक्त हार (हार-हुमेल) पहना था। उसकी कलाइयों में चूड़ियाँ थीं और उसकी एड़ियों में सोने के खनकते पायल थे।

तात्पर्य : यहाँ कृत-शिरः-स्नानम् शब्द आया है। स्मृति शास्त्र में नित्यकर्मों में जो निर्देश दिये गये हैं उनमें स्त्रियों को प्रतिदिन गर्दन तक स्नान करने की अनुमति है। प्रतिदिन सिर के बालों को धोने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि बाल गीले रहने से ठंड पकड़ सकती है। अतः सामान्य रूप से स्त्रियों को गले तक स्नान करने का विधान है और कुछ विशेष अवसरों पर ही वे पूर्ण स्नान करती हैं। इस अवसर पर देवहूति ने पूर्ण स्नान किया और अपने केशों को ठीक से धोया। जब स्त्री सामान्य स्नान करती है, तो उसे मल-स्नान कहते हैं, किन्तु जब वह सिर समेत पूर्ण स्नान करती है, तो उसे शिर-स्नान कहते हैं। ऐसे अवसर पर सिर में लगाने के लिए काफी तेल लगता है। स्मृतिशास्त्र के टीकाकारों का यही आदेश है।

श्रोण्योरध्यस्तया काञ्च्या काञ्चन्या बहुरत्नया ।
हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्रोण्योः—कटि-भाग पर; अध्यस्तया—पहने हुए; काञ्च्या—करधनी से; काञ्चन्या—सोने की; बहु-रत्नया—अनेक रत्नों से भूषित; हारेण—मोती के हार से; च—तथा; महा-अर्हेण—बहुमूल्य; रुचकेन—शुभ समाग्रियों से; च—तथा; भूषितम्—सज्जित ।

उसने कमर में अनेक रत्नों से जटित सोने की करधनी पहन रखी थी; वह बहुमूल्य मोतियों के हार तथा मंगल-द्रव्यों से सुसज्जित थी ।

तात्पर्य : मंगल-द्रव्यों में केसर, कुमकुम तथा चन्दन का लेप सम्मिलित हैं । नहाने के पूर्व अन्य पदार्थ भी समूचे शरीर में मले जाते हैं यथा सरसों के तेल के साथ हल्दी । देवहूति को ऊपर से नीचे तक नहलाने के लिए सभी प्रकार की मंगल वस्तुएँ प्रयुक्त की गई ।

सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्निग्धापाङ्गेन चक्षुषा ।
पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

सुदता—सुन्दर दाँतों वाली; सु-भ्रुवा—मनोहर भौहों वाली; श्लक्ष्ण—सुन्दर; स्निग्ध—गीली; अपाङ्गेन—तिरछी चितवन से; चक्षुषा—आँखों से; पद्म-कोश—कमल की कलियाँ; स्पृधा—परास्त करने वाली; नीलैः—नीली-नीली; अलकैः—घुँघराले बाल से; च—तथा; लसत्—चमकती हुई; मुखम्—मुख ।

उसका मुखमण्डल सुन्दर दाँतों तथा मनोहर भौहों से चमक रहा था । उसके नेत्र सुन्दर स्निग्ध कोरों से स्पष्ट दिखाई पड़ने के कारण कमल कली की शोभा को मात करते थे । उसका मुख काले घुँघराले बालों से घिरा हुआ था ।

तात्पर्य : वैदिक संस्कृति के अनुसार श्वेत दाँतों को अत्यधिक पसन्द किया जाता है । देवहूति के श्वेत दाँतों से उसके मुख की सुन्दरता बढ़ गई और वह कमल पुष्प के समान दिखने लगा । जब मुख अत्यन्त आकर्षक लगता है, तो नेत्रों की तुलना कमलदलों से और मुख की उपमा कमल पुष्प से दी जाती है ।

यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् ।
तत्र चास्ते सह स्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; सस्मार—स्मरण किया; ऋषभम्—अग्रगण्य; ऋषीणाम्—ऋषियों में; दयितम्—प्रिय; पतिम्—पति; तत्र—वहाँ; च—तथा; आस्ते—उपस्थित थी; सह—साथ; स्त्रीभिः—दासियों के; यत्र—जहाँ; आस्ते—उपस्थित था; सः—वह; प्रजापतिः—प्रजापति (कर्दम)।

जब उसने ऋषियों में अग्रगण्य अपने परम प्रिय पति कर्दम मुनि का स्मरण किया, तो वह अपनी समस्त दासियों सहित वहाँ प्रकट हो गई जहाँ मुनि थे।

तात्पर्य : इस श्लोक से लगता है कि प्रारम्भ में देवहूति अपने को मैली-कुचैली समझकर बेढंगे वस्त्र धारण किये थी। जब उसके पति ने सरोवर में प्रवेश करने के लिए कहा तो उसे दासियाँ दिखीं जिन्होंने उसकी देखभाल की। यह सब जल के भीतर हुआ और ज्योंही उसने अपने प्रिय पति कर्दम मुनि का स्मरण किया, तो तुरन्त ही वह उनके समक्ष उपस्थित हो गई। ये कुछ शक्तियाँ हैं, जिन्हें सिद्ध योगी प्राप्त करते हैं। वे इच्छानुसार कुछ भी कर सकते हैं।

भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा ।

निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

भर्तुः—अपने पति की; पुरस्तात्—उपस्थिति में, समक्ष; आत्मानम्—स्वयं को; स्त्री-सहस्र—एक हजार दासियों से; वृतम्—घिरी; तदा—तब; निशाम्य—देखकर; तत्—उसका; योग-गतिम्—योगशक्ति; संशयम् प्रत्यपद्यत—वह चकित हुई।

अपने पति की उपस्थिति में अपने चारों ओर एक हजार दासियाँ और पति की योगशक्ति देखकर वह अत्यन्त चकित थी।

तात्पर्य : देवहूति ने प्रत्येक वस्तु को चमत्कारिक ढंग से होते देखा, किन्तु जब उसे पति के समक्ष लाया गया तो उसकी समझ में आया कि यह सब उनकी योगशक्ति से हुआ। वह समझ गई कि कर्दम मुनि जैसे योगी के लिए कुछ भी करना असम्भव नहीं है।

स तां कृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत् ।

आत्मनो बिभ्रतीं रूपं संवीतरुचिरस्तनीम् ॥ ३६ ॥

विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् ।

जातभावो विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

सः—मुनि; ताम्—उसको (देवहूति को); कृत-मल-स्नानाम्—स्वच्छ स्नान किये हुए; विभ्राजन्तीम्—चमकती हुई; अपूर्व-वत्—अतुलनीय; आत्मनः—उसका निजी; बिभ्रतीम्—से युक्त; रूपम्—सौंदर्य; संवीत—कसे हुए; रुचिर—मोहक; स्तनीम्—वक्षस्थलों वाली; विद्याधरी—गंधर्वकुमारियों से; सहस्रेण—एक हजार; सेव्यमानाम्—सेवित; सु-वाससम्—श्रेष्ठ वस्त्रों से युक्त; जात-भावः—भाव से विभोर; विमानम्—प्रासाद जैसा विमान; तत्—उस; आरोहयत्—उसे चढ़ा लिया; अमित्र-हन्—हे शत्रुओं के नाशकर्ता।

मुनि ने देखा कि देवहूति ने स्नान कर लिया है और चमक रही है मानो वह उनकी पहले वाली पत्नी नहीं है। उसने राजकुमारी जैसा अपना पूर्व सौन्दर्य पुनः प्राप्त कर लिया था। वह श्रेष्ठ वस्त्रों से आच्छादित सुन्दर वक्षस्थलों वाली थी। उसकी आज्ञा के लिए एक हजार गंधर्व कन्याएँ खड़ी थीं। हे शत्रुजित, मुनि को उसकी चाह उत्पन्न हुई और उन्होंने उसे हवाई-प्रासाद में चढ़ा लिया।

तात्पर्य : विवाह के पूर्व जब देवहूति अपने माता-पिता के साथ कर्दम मुनि के समक्ष आई थी तो वह अत्यन्त सुन्दरी राजकुमारी थी। कर्दम मुनि को उसके पूर्व सौन्दर्य का स्मरण था। किन्तु ब्याह के बाद वह मुनि की सेवा में तल्लीन हो गई और उसने अपने शरीर की परवाह न की, क्योंकि कोई साधन नहीं था। वह पति के साथ कुटी में रहकर उसकी सेवा में लगी रहती थी, जिससे उसका राजसी सौन्दर्य जाता रहा और वह एक सामान्य दासी की तरह लगने लगी थी। जब कर्दम मुनि की आज्ञा से गंधर्व कुमारियों ने उसे स्नान कराया तो उसे पूर्ववत् सौन्दर्य प्राप्त हो गया जिससे कर्दम मुनि उससे आकृष्ट हुए। तरुणी का वास्तविक सौन्दर्य उसके स्तनों में है। जब कर्दम मुनि ने अपनी पत्नी के अलंकृत स्तनों को देखा, जिससे उसका सौंदर्य कई गुना बढ़ा हुआ था, तो एक महान् मुनि होते हुए भी वे आकर्षित हो गये। अतः श्रीपाद शंकराचार्य ने दिव्य ज्ञानियों को सचेत किया कि जो दिव्य-साक्षात्कार के लिए तत्पर रहते हैं उन्हें स्त्रियों के उन्नत स्तनों से आकृष्ट नहीं होना चाहिए, क्योंकि वे शरीर के भीतर चर्बी तथा रक्त की अन्तःक्रिया के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययानुरक्तो

विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ।

बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्य-

स्ताराभिरावृत इवोदुपतिर्नभःस्थः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उसमें; अलुप्त—बिना खोये हुए; महिमा—यश; प्रियया—अपनी प्रियतमा के साथ; अनुरक्तः—लुब्ध; विद्याधरीभिः—गंधर्व कन्याओं से; उपचीर्ण—सेवित; वपुः—शरीर; विमाने—विमान में; बभ्राज—चमकता था; उत्कच—खुला; कुमुत्-गणवान्—चन्द्रमा जिससे कुमुदिनियाँ खिलती हैं; अपीच्यः—अत्यन्त आकर्षक; ताराभिः—तारागणों से; आवृतः—घिरा हुआ; इव—जिस प्रकार; उडु-पतिः—चन्द्रमा (नक्षत्रों में मुख्य); नभः-स्थः—आकाश में।

अपनी प्रिया पर अत्यधिक अनुरक्त रहने तथा गंधर्व-कन्याओं द्वारा सेवित होने पर भी मुनि की महिमा कम नहीं हुई, क्योंकि उनको अपने पर नियंत्रण प्राप्त था। उस हवाई-प्रासाद में कर्दम मुनि अपनी प्रिया के साथ इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो आकाश में नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा हो, जिससे रात्रि में जलाशयों में कुमुदिनियाँ खिलती हैं।

तात्पर्य : चूँकि प्रासाद आकाश में था, अतः इस श्लोक में पूर्ण चन्द्रमा तथा नक्षत्रों से दी गई उपमा अत्यन्त सुन्दर है। कर्दम मुनि पूर्ण चन्द्रमा के समान लग रहे थे और उनकी पत्नी देवहूति के चारों ओर एकत्र कन्याएँ नक्षत्रों के समान थीं। पूर्णिमा की रात्रि में नक्षत्र तथा चन्द्रमा मिलकर सुन्दर नक्षत्र-समूह की रचना करते हैं; उसी तरह आकाश स्थित उस प्रासाद में कर्दम मुनि गंधर्व कन्याओं से घिरी अपनी सुन्दर पत्नी के साथ चन्द्रमा तथा नक्षत्रों के समान प्रतीत हो रहे थे।

तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्र-
द्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ।
सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपातशिवस्वनासु
रेमे चिरं धनदवल्ललनावरुथी ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तेन—उस विमान से; अष्ट-लोक-प—आठों स्वर्गलोकों के मुख्य देवताओं का; विहार—भ्रमणस्थली; कुल-अचल-इन्द्र—पर्वतों के राजा (मेरु) की; द्रोणीषु—घाटियों में; अनङ्ग—कामदेव का; सख—साथी; मारुत—वायु से; सौभगासु—सुन्दर; सिद्धैः—सिद्धों के द्वारा; नुतः—प्रशंसित; द्यु-धुनि—गंगा की; पात—गिरने की; शिव-स्वनासु—मंगलध्वनि से हिलती; रेमे—सुख भोगा; चिरम्—दीर्घकाल तक; धनद-वत्—कुबेर के समान; ललना—कन्याओं से; वरुथी—घिरे हुए।

उस हवाई-प्रासाद में आरूढ़ हो वे मेरु पर्वत की सुखद घाटियों में भ्रमण करते रहे जो शीतल, मन्द तथा सुगन्ध वायु से अधिक सुन्दर होकर कामवासना को उत्तेजित

करनेवाली थी। इन घाटियों में देवताओं का धनपति कुबेर सुन्दरियों से घिरा रहकर और सिद्धों द्वारा प्रशंसति होकर आनन्द लाभ उठाता है। कर्दम मुनि भी अपनी पत्नी तथा उन सुन्दर कन्याओं से घिरे हुए वहाँ गये और अनेक वर्षों तक सुख-भोग किया।

तात्पर्य : कुबेर उन आठ देवताओं में से एक हैं, जो ब्रह्माण्ड की विभिन्न दिशाओं के स्वामी हैं। कहा जाता है कि इन्द्र ब्रह्माण्ड की पूर्व दिशा के स्वामी हैं, जिधर स्वर्ग स्थित है। इसी प्रकार अग्नि आग्नेय दिशा (दक्षिण-पूर्व) के स्वामी हैं। पापियों को दण्ड देने वाले यम दक्षिण दिशा के और निर्ऋति नैऋत्य दिशा (दक्षिण-पश्चिम) के स्वामी है। जल के स्वामी वरुण पश्चिम दिशा के स्वामी हैं तथा हवा को वश में रखने वाले तथा पंखों से उड़ने वाले वायु वायव्य (उत्तर-पश्चिम) दिशा के स्वामी हैं। देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर ब्रह्माण्ड की उत्तर दिशा के स्वामी हैं। ये सारे देवता सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य कहीं पर स्थित मेरुपर्वत की घाटी में आनन्द मनाते हैं। कर्दम मुनि ने इस हवाई प्रासाद में आठों दिशाओं की यात्रा की जिसका नियन्त्रण विभिन्न देवता करते हैं। देवताओं की भाँति वे भी मेरु पर्वत में विहार करने गये। जब कोई मनुष्य तरुणी सुन्दरियों से घिरा हो तो कामवासना का जागृत होना स्वाभाविक है। कर्दम मुनि को भी उत्तेजना हुई और वे वर्षों तक वहीं अपनी पत्नी के साथ विहार करते रहे। किन्तु उनके इस काम-व्यापार की सिद्धों ने प्रशंसा की, क्योंकि विश्व-कल्याण के लिए एक उत्तम संतान की आवश्यकता थी।

वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्पभद्रके ।

मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

वैश्रम्भके—वैश्रम्भक उद्यान में; सुरसने—सुरसन में; नन्दने—नन्दन में; पुष्पभद्रके—पुष्पभद्रक में; मानसे—मानसरोवर के तट पर; चैत्ररथ्ये—चैत्रपथ में; च—तथा; सः—वह; रेमे—भोग करता रहा; रामया—अपनी पत्नी से; रतः—तुष्ट।

अपनी पत्नी से संतुष्ट होकर वे उस विमान में न केवल मेरु पर्वत पर ही वरन् वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन, पुष्पभद्रक तथा चैत्ररथ्या में और मानसरोवर के तट पर भी विहार करते रहे।

भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ।

वैमानिकानत्यशेत चरँल्लोकान्यथानिलः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

भ्राजिष्णुना—कान्तिमान; विमानेन—विमान से; काम-गेन—इच्छानुसार उड़ने वाला; महीयसा—अत्यधिक;
वैमानिकान्—अपने विमान में स्थित देवतागण; अत्यशेत—आगे बढ़ गया; चरन्—यात्रा करते हुए; लोकान्—लोकों से होकर; यथा—जिस प्रकार; अनिलः—वायु।

वे रास्ते में विभिन्न लोकों से होकर उसी तरह यात्रा करते रहे जिस प्रकार वायु प्रत्येक दिशा में अबाध रूप से चलती रहती है। उसी महान् तथा कान्तिमान हवाई-प्रासाद में, जो उनकी इच्छानुसार उड़ सकता था, बैठकर वे देवताओं से बाजी मार ले गये।

तात्पर्य : देवताओं द्वारा निवसित लोक अपनी-अपनी कक्ष्याओं तक ही सीमित रहते हैं, किन्तु कर्दम मुनि अपनी योगशक्ति से बिना रोक-टोक के ब्रह्माण्ड की किसी भी दिशा में यात्रा कर सके थे। इस ब्रह्माण्ड में रहने वाली जीवात्माएँ बद्धजीव कहलाती हैं अर्थात् वे अन्यत्र जाने के लिए स्वच्छन्द नहीं हैं। हम इस भूलोक के वासी हैं, हम अन्य लोकों में स्वच्छन्द विचरण नहीं कर सकते। आधुनिक युग में मानव अन्य लोकों (ग्रहों) में जाने का प्रयत्न कर रहा है, किन्तु अभी तक वह असफल रहा है। अन्य किसी लोक की यात्रा करना सम्भव नहीं है, क्योंकि प्राकृतिक नियमों के कारण देवता तक एक लोक से दूसरे में नहीं आ-जा सकते। किन्तु कर्दम मुनि अपनी योगशक्ति से देवताओं से भी आगे निकल गये थे और वे समस्त दिशाओं में आकाश में यात्रा कर सकते थे। यहाँ पर दी गई उपमा सटीक है। यथा अनिलः शब्द इस बात का सूचक है कि वायु बिना रोक-टोक के कहीं भी विचर सकती है, उसी तरह से कर्दम मुनि भी ब्रह्माण्ड की समस्त दिशाओं में भ्रमण कर रहे थे।

किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम् ।

यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; दुरापादनम्—प्राप्त करना कठिन, दुर्लभ; तेषाम्—उनके लिए; पुंसाम्—मनुष्यों को; उद्दाम-चेतसाम्—जो दृढ़ संकल्प हैं; यैः—जिनके द्वारा; आश्रितः—शरण ली गई है; तीर्थ-पदः—श्रीभगवान् के; चरणः—पाँव; व्यसन-अत्ययः—भव-भय को हरने वाले।

जिन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरण-कमलों की शरण प्राप्त कर ली है उन दृढ़प्रतिज्ञ मनुष्यों के लिए कौन सी वस्तु दुर्लभ है? उनके चरण तो गंगा जैसी पवित्र नदी के उद्गम हैं, जिनसे सांसारिक जीवन के समस्त अनिष्ट दूर हो जाते हैं।

तात्पर्य : यहाँ *यैराश्रितस्तीर्थपदश्रणो* शब्द समूह अत्यन्त सार्थक है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तीर्थपाद कहलाते हैं। गंगा पवित्र नदी कहलाती है, क्योंकि यह भगवान् विष्णु के पाँव के अँगूठे से निकली है। गंगा बद्धजीवों के समस्त भौतिक संतापों का निवारण करने के निमित्त है। अतः जिस जीवात्मा ने भगवान् के पवित्र चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली है उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। कर्दम मुनि इसलिए विशिष्ट नहीं हैं, क्योंकि वे महान् योगी थे, वरन् इसलिए कि वे महान् भक्त थे। इसलिए यहाँ पर यह कहा गया है कि कर्दम जैसे महामुनि के लिए कुछ भी असम्भव न था। यद्यपि योगीजन आश्चर्यजनक कलाएँ दिखा सकते हैं जैसाकि कर्दम ने पहले ही कर दिखाया था, किन्तु वे किसी सामान्य योगी से बढ़कर थे, क्योंकि वे भगवान् के परम भक्त थे। इसलिए वे सामान्य योगी की अपेक्षा अधिक महिमांडित थे। जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि हुई है, “अनेक योगियों में वही सर्वश्रेष्ठ है, जो भगवान् का भक्त है।” कर्दम मुनि जैसे व्यक्ति के लिए बद्ध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। वे पहले से ही मुक्त थे और देवताओं से भी बढ़कर थे, क्योंकि वे भी बद्ध होते हैं। यद्यपि वे अपनी पत्नी तथा अन्य अनेक स्त्रियों के साथ विहार कर रहे थे, किन्तु भौतिक बद्धजीवन से ऊपर थे। इसीलिए *व्यसनात्ययः* शब्द प्रयुक्त हुआ है, जो यह सूचित करता है कि वे बद्धजीव की स्थिति से ऊपर थे। वे समस्त भौतिक सीमाओं से परे थे।

प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्यै यावान्स्वसंस्थया ।

ब्रह्माश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

प्रेक्षयित्वा—दिखलाकर; भुवः—ब्रह्माण्ड का; गोलम्—गोलक; पत्यै—अपनी पत्नी को; यावान्—जितना भी; स्व-संस्थया—अपनी रचना सहित; बहु-आश्चर्यम्—अनेक आश्चर्यों से पूर्ण; महा-योगी—परमयोगी (कर्दम); स्व-आश्रमाय—अपने आश्रम को; न्यवर्तत—लौट आया ।

अपनी पत्नी को अनेक आश्चर्यों से पूर्ण ब्रह्माण्ड गोलक तथा इसकी रचना

दिखलाकर परमयोगी कर्दम मुनि अपने आश्रम को लौट आये।

तात्पर्य : यहाँ पर सभी लोकों को *गोल* अर्थात् गोला कहकर वर्णन किया गया है। प्रत्येक लोक (ग्रह) गोला होता है और वैसे ही विश्रामस्थल है, जिस प्रकार सागर के भीतर द्वीप होता है। लोकों को कभी-कभी द्वीप या वर्ष भी कहते हैं। यह पृथ्वीलोक भारतवर्ष कहलाता है, क्योंकि राजा भरत इसमें राज्य करते थे। इस श्लोक में प्रयुक्त दूसरा महत्त्वपूर्ण शब्द है *ब्रह्मश्चर्यम्* अर्थात् “अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएँ”। यह इस बात का सूचक है कि विभिन्न लोक ब्रह्माण्ड भर में आठों दिशाओं में फैले हुए हैं और इनमें से प्रत्येक आश्चर्यमय है। इनमें से प्रत्येक लोक की अपनी जलवायु है और विशिष्ट प्रकार के निवासी हैं और हर एक में सभी वस्तुएँ हैं, यहाँ तक कि ऋतुओं की सुन्दरता भी है। इसी प्रकार *ब्रह्म-संहिता* (५.४०) में कहा गया है—विभूतिभिन्नम्—प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न प्रकार का ऐश्वर्य है। ऐसा नहीं है कि एक लोक दूसरे के जैसा ही हो; भगवान् की कृपा से, प्रकृति के नियमानुसार प्रत्येक लोक की रचना भिन्न प्रकार से हुई है और उसका आश्चर्यजनक ढाँचा भी भिन्न है। कर्दम मुनि को ऐसे सभी आश्चर्यों का स्वयं को अनुभव तब हुआ जब वे अपनी पत्नी के साथ यात्रा कर रहे थे, किन्तु तो भी वे अपने सादे से आश्रम में लौट आये। उन्होंने अपनी राजकुमारी-पत्नी को दिखा दिया कि भले ही वे आश्रम में रह रहे थे, किन्तु वे अपने योगबल से कहीं भी जा सकते थे और कुछ भी कर सकते थे। यही योग की सिद्धि है। मात्र कतिपय आसनों का प्रदर्शन करके कोई पूर्ण योगी नहीं बन सकता और न ही ऐसे आसनों के प्रदर्शन एवं तथाकथित ध्यान से कोई ईश्वर बन सकता है, जैसाकि आजकल विज्ञापित किया जा रहा है। मूर्ख लोग विश्वास करके दिग्भ्रमित हो जाते हैं कि छः मास के भीतर ध्यान के ढोंग तथा आसन करने मात्र से वे ईश्वर बन सकते हैं।

यहाँ पर ऐसे पूर्णयोगी का उदाहरण प्रस्तुत है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की यात्रा कर सकता था। इसी प्रकार दुर्वासा मुनि का वर्णन है जिन्होंने अन्तरिक्ष की यात्रा की थी। वस्तुतः पूर्ण योगी ही ऐसा कर सकता है। किन्तु यदि कोई ब्रह्माण्ड भर की यात्रा कर ले और कर्दम मुनि

जैसी आश्चर्यजनक करामातें दिखावे तो भी उसकी तुलना पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से नहीं की जा सकती, क्योंकि उनकी अकल्पनीय शक्ति को कोई भी बद्धजीव या मुक्तजीव प्राप्त नहीं कर सकता। कर्दम मुनि के कार्यों से हम समझ सकते हैं कि महान् योगशक्ति होने पर भी वे भगवान् के भक्त बने रहे। प्रत्येक जीवात्मा की असली स्थिति यही है।

विभज्य नवधात्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम् ।
रामां निरमयन्नेमे वर्षपूगान्मुहूर्तवत् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

विभज्य—विभक्त करके; नव-धा—नौ रूपों में; आत्मानम्—स्वयं को; मानवीम्—मनु की पुत्री (देवहूति); सुरत—संभोग के लिए; उत्सुकाम्—अत्यन्त इच्छुक; रामाम्—अपनी पत्नी को; निरमयन्—आनन्द प्रदान करते हुए; रेमे—सुख भोगा; वर्ष-पूगान्—अनेक वर्षों तक; मुहूर्तवत्—एक क्षण के सदृश।

अपने आश्रम लौटने पर उन्होंने मनु की पुत्री देवहूति के सुख लिए, जो रति सुख के लिए अत्यधिक उत्सुक थी, अपने आपको नौ रूपों में विभक्त कर लिया। इस प्रकार उन्होंने उसके साथ अनेक वर्षों तक विहार किया, जो एक क्षण के समान व्यतीत हो गये।

तात्पर्य : यहाँ पर मनु की पुत्री देवहूति को सुरतोत्सुक बतलाया गया है। अपने पति के साथ समस्त ब्रह्माण्ड की यात्रा करके, मेरु पर्वत तथा स्वर्गलोक के मनोरम उद्यानों की सैर करने से वह स्वभाविक रूप से कामोत्तेजित हो उठी और कर्दम मुनि ने उसकी कामेच्छा को तुष्ट करने के लिए नौ रूपों में अपना विस्तार कर लिया। वे एक के स्थान पर नौ हो गये और इस प्रकार नौ व्यक्तियों ने देवहूति के साथ वर्षों तक संभोग किया। ऐसा समझा जाता है कि स्त्री की काम-क्षुधा पुरुष की अपेक्षा नौ-गुनी अधिक होती है। इसका यहाँ पर स्पष्ट उल्लेख है। अन्यथा कर्दम मुनि को नौ रूपों में अपना विस्तार करने की कोई आवश्यकता न थी। यहाँ पर योगशक्ति का अन्य उदाहरण प्राप्त होता है। जिस प्रकार श्रीभगवान् लाखों रूपों में अपना विस्तार कर सकते हैं उसी प्रकार योगी नौ रूपों में अपना विस्तार कर सकता है, किन्तु उससे अधिक नहीं। एक अन्य दृष्टान्त सौभरि मुनि का है। उन्होंने आठ रूपों में अपना विस्तार किया था। किन्तु योगी चाहे कितना ही शक्तिमान क्यों न हो वह आठ या नौ रूपों से अधिक में

अपना विस्तार नहीं कर सकता। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तो लाखों रूप ग्रहण कर सकते हैं, वे अनन्त रूप जो हैं जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* में उन्हें कहा गया है। भगवान् की समता किसी भी कल्पनीय शक्ति से नहीं की जा सकती।

तस्मिन्विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता ।

न चाबुध्यत तं कालं पत्यापीच्येन सङ्गता ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस; विमाने—विमान में; उत्कृष्टाम्—सर्वश्रेष्ठ; शय्याम्—सेज; रति-करीम्—कामेच्छा को बढ़ाने वाली; श्रिता—स्थित; न—नहीं; च—तथा; अबुध्यत—उसने ध्यान दिया; तम्—उस; कालम्—समय; पत्या—अपने पति के साथ; अपीच्येन—अत्यन्त मनोहर; सङ्गता—संगति में, साथ में।

उस विमान में, देवहूति अपने पति के साथ उत्कृष्ट एवं कामेच्छा बढ़ाने वाली सेज में स्थित रह कर जान भी न पाई कि कितना समय कैसे बीत गया।

तात्पर्य : भौतिक मनुष्यों को रतिक्रीड़ा इतनी सुखकर लगती है कि उन्हें याद ही नहीं रहती कि समय किस प्रकार बीत गया। कर्दम मुनि तथा देवहूति भी अपनी रतिक्रीड़ा के समय भूल गये कि समय किस प्रकार बीत रहा है।

एवं योगानुभावेन दम्पत्यो रममाणयोः ।

शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; योग-अनुभावेन—योगशक्ति से; दम्-पत्योः—पति-पत्नी; रममाणयोः—स्वयं आनन्द भोगते हुए; शतम्—एक सौ; व्यतीयुः—बीते; शरदः—शरद ऋतुएँ; काम—रतिसुख; लालसयोः—जो लालायित थे; मनाक्—अल्प समय के समान।

रति सुख के उत्कट इच्छुक पति-पत्नी योग शक्तियों के बल पर विहार करते रहे और एक सौ वर्ष अल्प काल के समान व्यतीत हो गये।

तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनात्मवित् ।

नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसङ्कल्पविद्विभुः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उसमें; आधत्त—स्थापित किया; रेतः—वीर्य; ताम्—उसको; भावयन्—मानते हुए; आत्मना—अपनी अर्धाङ्गिनी के रूप में; आत्म-वित्—आत्मा का ज्ञाता; नोधा—नौ में; विधाय—विभक्त करके; रूपम्—शरीर; स्वम्—अपने; सर्व-सङ्कल्प-वित्—समस्त इच्छाओं के ज्ञाता; विभुः—अत्यन्त शक्तिमान कर्दम।

शक्तिमान कर्दम मुनि सबों के मन की बात जानने वाले थे और जो कुछ माँगे उसे वही प्रदान कर सकते थे। आत्मा के ज्ञाता होने के कारण वे देवहूति को अपनी अर्धाङ्गिनी मानते थे। अपने आपको नौ रूपों में विभक्त करके उन्होंने देवहूति के गर्भ में नौ बार वीर्यपात किया।

तात्पर्य : चूँकि कर्दम मुनि जान गये थे कि देवहूति कई सन्तानें चाहती है, अतः उन्होंने एक ही बार में नौ सन्तानें उत्पन्न कीं। यहाँ पर उन्हें विभु कहा गया है—अर्थात् वे सर्वाधिक शक्तिमान स्वामी थे। उन्होंने अपनी योगशक्ति से देवहूति के गर्भ से नौ कन्याएँ उत्पन्न कीं।

अतः सा सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः ।

सर्वास्ताश्रारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धयः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

अतः—तब; सा—उसने; सुषुवे—जन्म दिया; सद्यः—एक ही दिन; देवहूतिः—देवहूति ने; स्त्रियः—स्त्रियाँ; प्रजाः—सन्तान; सर्वाः—सभी; ताः—वे; चारु—सर्व—अङ्ग्यः—सर्वांग सुन्दर; लोहित—लाल; उत्पल—कमल के समान; गन्धयः—सुगन्धित।

उसके तुरन्त बाद उसी दिन देवहूति ने नौ कन्याओं को जन्म दिया जिनके अंग अंग सुन्दर थे और उनसे लाल कमल की सी सुगन्धि निकल रही थी।

तात्पर्य : देवहूति अत्यधिक कामोत्तेजित थी जिससे उसके अधिक अण्डाणु स्वलित हुए और नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। स्मृतिशास्त्र तथा साथ ही साथ आयुर्वेद में यह कहा गया है कि जब पुरुष का स्वलन अधिक होता है, तो पुत्र उत्पन्न होते हैं और जब स्त्री का स्वलन अधिक होता है, तो पुत्रियाँ होती हैं। परिस्थितियों से प्रतीत होता है कि देवहूति अधिक कामोत्तेजित थी, अतः उसने तुरन्त नौ कन्याओं को जन्म दिया। किन्तु सभी कन्याएँ अतीव सुन्दर थीं और उनके शरीर सुगठित थे, उनमें से प्रत्येक कमलपुष्प के समान थी और कमल के ही समान सुगन्धित भी।

पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदालक्ष्योशती बहिः ।

समयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

पतिम्—उसका पति; सा—वह; प्रब्रजिष्यन्तम्—घर छोड़ने को तत्पर; तदा—तब; आलक्ष्य—देखकर; उशती—सुन्दर; बहिः—बाहर से; स्मयमाना—हँसती हुई; विक्लवेन—विचलित, विकल; हृदयेन—हृदय से; विदूयता—संतप्त।

जब उसने देखा कि उसके पति गृह-त्याग करने ही वाले हैं, तो वह बाहर से हँसी, किन्तु हृदय में अत्यन्त विकल और सन्तप्त थी।

तात्पर्य : कर्दम मुनि ने अपनी योगशक्ति से अपने गृहस्थी के कार्यों को जल्दी ही समाप्त कर लिया। हवा में प्रासाद खड़ा करने, अपनी पत्नी तथा गंधर्व कन्याओं के साथ समग्र ब्रह्माण्ड का भ्रमण और फिर सन्तान उत्पन्न करने के कार्य समाप्त हो चुके और अब अपने पूर्व वचनों के अनुसार उन्हें अपना घर छोड़कर आत्म-बोध की अपनी असली रुचि के लिए प्रस्थान करना था। अपने पति को प्रस्थान की स्थिति में देखकर देवहूति मन ही मन अत्यन्त विकल थी, किन्तु ऊपर से हँस रही थी। कर्दम मुनि के उदाहरण को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए; जिस व्यक्ति की प्रमुख रुचि कृष्णभावनामृत में है, यदि वह गृहस्थ जीवन में फँस भी जाता है, तो उसे घर के आकर्षण को जितनी जल्दी हो सके त्याग देने के लिए उद्यत रहना चाहिए।

लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया ।

उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

लिखन्ती—कुरेदती हुई; अधः—मुखी—अपना मुँह नीचे किये; भूमिम्—पृथ्वी को; पदा—अपने पाँव से; नख—नाखूनों; मणि—मणि के तुल्य; श्रिया—दमक से; उवाच—वह बोली; ललिताम्—मोहक; वाचम्—वाणी; निरुध्य—रोक कर; अश्रु-कलाम्—आँसू; शनैः—धीरे-धीरे।

वह खड़ी थी और मणितुल्य नाखूनों से मण्डित अपने पैर से पृथ्वी को कुरेद रही थी। उसका सिर झुका था और वह अपने आँसुओं को रोककर धीरे-धीरे मोहक वाणी से बोली।

तात्पर्य : देवहूति इतनी सुन्दर थी कि उसके पैर के नाखून मोतियों जैसे लग रहे थे। वह भूमि को नाखूनों से कुरेद रही थी तो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो भूमि पर मोती बिखरे हों। जब कोई स्त्री अपने पाँव से जमीन कुरेदती है, तो यह इसका संकेत है कि उसका मन

विचलित है। ऐसे ही संकेत कभी-कभी गोपियाँ श्रीकृष्ण के समक्ष प्रकट करती थीं। जब गोपियाँ अर्द्धरात्रि के समय श्रीकृष्ण के पास गईं तो उन्होंने उनसे अपने-अपने घरों को जाने के लिए कहा। उस समय गोपियाँ इसी प्रकार से भूमि कुरेदने लगीं, क्योंकि उनके मन अत्यधिक विक्षुब्ध थे।

देवहूतिरुवाच

सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् ।
अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

देवहूतिः—देवहूति ने; उवाच—कहा; सर्वम्—सभी; तत्—वह; भगवान्—हे भगवान्; मह्यम्—मेरे लिए;
उपोवाह—पूर्ण हुई; प्रतिश्रुतम्—वचन दिया; अथ अपि—फिर भी; मे—मुझको; प्रपन्नायै—शरणागत को;
अभयम्—निर्भीकता; दातुम्—देने के लिए; अर्हसि—योग्य हो।

देवहूति ने कहा—हे स्वामी, आपने जितने वचन दिये थे वे सब पूर्ण हुए, किन्तु मैं आपकी शरणागत हूँ इसलिए मुझे अभयदान भी दें।

तात्पर्य : देवहूति ने अपने पति से प्रार्थना की कि वे उसे अभय प्रदान करें। पत्नी रूप में वह अपने पति के प्रति पूर्णतया समर्पित थी, अतः यह पति का धर्म है कि वह अपनी पत्नी को अभयदान दे। *श्रीमद्भागवत* के पंचम स्कंध में बताया गया है कि अपने आश्रित को किस प्रकार अभयदान दिया जाता है। जो मृत्यु के चंगुल से नहीं छूट पाता वह आश्रित है, उसे चाहिए कि वह न तो गुरु बने, न पति, न परिजन, न पिता, न माता इत्यादि। यह तो श्रेष्ठों का धर्म है कि अपने अधीनस्थ को अभयदान दें। अतः पिता, माता, गुरु, नातेदार या पति के रूप में किसी की जिम्मेदारी लेने वाले को चाहिए कि अपने अधीनस्थ को संसार की भयावह स्थिति से छुटकारा दिलाए। भौतिक जीवन सदैव भयावह एवं चिन्ताओं से पूर्ण है। देवहूति कहती है, “आपने मुझे अपनी योगशक्ति से सभी प्रकार की भौतिक सुविधाएँ प्रदान की हैं और अब आप प्रस्थान करने वाले हैं, अतः आप अपना अन्तिम दान (वर) भी देते जाएँ जिससे मैं इस बद्धजीवन से मुक्त हो सकूँ”।

ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ।

कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; दुहितृभिः—कन्याओं के द्वारा; तुभ्यम्—तुम्हारे लिए; विमृग्याः—ढूँढे जाने के हुए; पतयः—पति; समाः—उपयुक्त; कश्चित्—कोई; स्यात्—होना चाहिए; मे—मेरा; विशोकाय—सान्त्वना के लिए; त्वयि—तुम्हारे; प्रव्रजिते—जा चुकने पर; वनम्—जंगल को।

हे ब्राह्मण, जहाँ तक आपकी पुत्रियों का प्रश्न है, वे स्वयं ही अपने योग्य वर ढूँढ लेंगी और अपने अपने घर चली जाएँगी। किन्तु आपके संन्यासी होकर चले जाने पर मुझे कौन सान्त्वना देगा ?

तात्पर्य : कहा गया है कि पिता ही दूसरे रूप में पुत्र बन जाता है। अतः पिता और पुत्र अभिन्न माने जाते हैं। पुत्रवती विधवा नहीं होती, क्योंकि उसके पास पति का प्रतिनिधि रहता है। इसी प्रकार देवहूति अप्रत्यक्ष रूप से कर्दम मुनि से एक प्रतिनिधि छोड़ जाने की याचना करती है, जिससे वह उनकी अनुपस्थिति में चिन्तामुक्त रह सके। गृहस्थ से यह आशा नहीं की जाती है कि वह सदैव घर पर रह सकेगा। अपने पुत्रों तथा पुत्रियों का ब्याह करके वह अपनी पत्नी को सयाने पुत्रों के संरक्षण में छोड़कर गृहस्थ जीवन से वैराग्य ले सकता है। वैदिक पद्धति की सामाजिक परम्परा ही ऐसी है। देवहूति अप्रत्यक्ष रूप से यह कह रही है कि घर से अनुपस्थित रहने की अवधि में कम से कम एक पुत्र अवश्य होना चाहिए जो उसे चिन्ताओं से मुक्ति दिला सके। इस मुक्ति का अर्थ है आध्यात्मिक शिक्षा। इस मुक्ति का अर्थ भौतिक सुविधाएँ नहीं है। भौतिक सुविधाएँ तो शरीर के साथ ही समाप्त हो जाएँगी, किन्तु आध्यात्मिक शिक्षा अन्त होता नहीं, यह तो आत्मा के साथ-साथ जाएगी। अध्यात्म की शिक्षा आवश्यक है, किन्तु योग्य पुत्र प्राप्त किये बिना देवहूति आध्यात्मिक ज्ञान कैसे प्राप्त कर पाती ? पति का धर्म है कि वह स्त्री-ऋण से मुक्त हो जाय। पत्नी एकनिष्ठ होकर पति की सेवा करती है और वह ऋणी बन जाता है, क्योंकि कोई अपने आश्रित की सेवा तब तक स्वीकार नहीं करता जब तक वह बदले में कुछ दे न देता। गुरु कभी भी आध्यात्मिक शिक्षा दिए बिना शिष्य की सेवा स्वीकार नहीं करता। प्रेम तथा कर्तव्य का यही पारस्परिक आदान-प्रदान है। इस प्रकार देवहूति कर्दम मुनि को स्मरण दिलाती है कि उसने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सेवा की है।

यदि वे स्त्री-ऋण से ही मुक्त होना चाहें तो प्रस्थान करने से पूर्व उन्हें चाहिए कि एक पुत्र दे जाँय। अप्रत्यक्ष रूप में देवहूति ने अपने पति से कुछ अधिक काल तक और या कम से कम जब तक एक पुत्र न हो ले, रहने के लिए प्रार्थना करती है।

एतावतालं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो ।
इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन परित्यक्तपरात्मनः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

एतावता—इतना; अलम्—व्यर्थ ही; कालेन—समय; व्यतिक्रान्तेन—बीतने पर; मे—मेरा; प्रभो—हे स्वामी; इन्द्रिय-अर्थ—इन्द्रिय-तृप्ति; प्रसङ्गेन—रतिक्रीड़ा में; परित्यक्त—परवाह न करके, उपेक्षा करके; पर-आत्मनः—परमेश्वर का ज्ञान।

अभी तक हमने अपना सारा समय परमेश्वर के ज्ञान के अनुशीलन की उपेक्षा करके इन्द्रियतृप्ति में ही व्यर्थ गँवाया है।

तात्पर्य : मनुष्य जीवन पशुओं की तरह इन्द्रियतृप्ति के कार्य में बिताने के लिए नहीं है। पशु सदैव इन्द्रियतृप्ति में—आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन में—लगे रहते हैं, किन्तु यह मनुष्यों का व्यापार नहीं है, यद्यपि भौतिक देह पाने के कारण इन्द्रियतृप्ति की उन्हें भी आवश्यकता रहती है किन्तु नियामक सिद्धान्तों के अनुसार। अतः, वास्तव में देवहूति ने अपने पति से यह कहा, “अभी तक हमारे ये पुत्रियाँ ही हैं और हमने सारे ब्रह्माण्ड की यात्रा करते हुए हवाई प्रासाद में सुखोपभोग किया है। आपकी कृपा से ही ये सारे वर प्राप्त हुए हैं, किन्तु वे सब इन्द्रियतृप्ति के हेतु थे। अब मुझे आत्मिक उन्नति के लिए कुछ चाहिए।”

इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः ।
अजानन्त्या परं भावं तथाप्यस्त्वभयाय मे ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रिय-अर्थेषु—इन्द्रियतृप्ति हेतु; सज्जन्त्या—अनुरक्त रह कर; प्रसङ्गः—आकर्षण; त्वयि—तुम्हारे लिए; मे—मेरे द्वारा; कृतः—किया गया था; अजानन्त्या—न जानते हुए; परम् भावम्—आपकी दिव्य स्थिति; तथा अपि—तो भी; अस्तु—होवे; अभयाय—भय दूर करने के लिए; मे—मेरा।

आपकी दिव्य स्थिति (पद) से परिचित न होने के कारण ही मैं इन्द्रियों के विषयों में लिप्त रह कर आपको प्यार करती रही। तो भी मैंने आपके लिए जो आकर्षण

(अनुराग) उत्पन्न कर लिया है, वह मेरे समस्त भय को दूर करे।

तात्पर्य : देवहूति अपनी दशा पर शोक प्रकट कर रही है। स्त्री होने के नाते वह प्रेम तो किसी से कर सकती थी। वह किसी कारणवश कर्दम मुनि से प्रेम करने लगी, किन्तु उनकी आध्यात्मिक उपलब्धि से वह अपरिचित ही रही। कर्दम मुनि देवहूति के मन की बात जान गये। सामान्यतः सभी स्त्रियाँ भौतिक सुख भोगना चाहती हैं। वे अल्पज्ञानी कही जाती हैं, क्योंकि भौतिक सुख के लिए उन्मुख रहती हैं। देवहूति को पछतावा है कि उसके पति ने सर्वश्रेष्ठ भौतिक सुख प्रदान किया, किन्तु उसे यह पता न चल पाया कि वे आत्म-बोध में इतने उठे हुए थे। उसका कहना है कि यद्यपि अपने महान् पति की महिमा को वह नहीं समझ पाई, किन्तु उनकी शरण में होने के कारण उसे भौतिक बन्धन से मुक्त होना चाहिए। महापुरुष की संगति बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। चैतन्य-चरितामृत में भगवान् चैतन्य ने कहा है कि साधु संग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि भले ही कोई ज्ञान में कितना बढ़ा-चढ़ा क्यों न हो, किसी महान् साधु पुरुष की संगति मात्र से वह तुरन्त आत्मजीवन में आगे बढ़ जाता है। एक स्त्री के रूप में सामान्य पत्नी बन कर देवहूति कर्दम मुनि से अपने इन्द्रिय सुख तथा अन्य सुविधाओं के लिए आसक्त थी, किन्तु वास्तव में उसे एक महान् पुरुष का सान्निध्य प्राप्त था। अब उसे इसका ज्ञान हुआ, अतः वह इस संगति का लाभ उठाना चाह रही थी।

सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया ।

स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

सङ्गः—संगति; यः—जो; संसृतेः—जन्म-मृत्यु के चक्र का; हेतुः—कारण; असत्सु—इन्द्रिय-तृप्ति में लगे रहने वालों के साथ; विहितः—किया गया; अधिया—अविद्या से; सः—वही वस्तु; एव—निश्चय ही; साधुषु—साधु पुरुषों के साथ; कृतः—किया गया; निःसङ्गत्वाय—मुक्ति के लिए; कल्पते—ले जाता है।

इन्द्रियतृप्ति हेतु संगति निश्चय ही बन्धन का मार्ग है। किन्तु जब वही संगति किसी साधु पुरुष से की जाती है, तो भले ही वह अनजाने में की जाय, मुक्ति के मार्ग पर ले जाने वाली है।

तात्पर्य : साधु पुरुष से चाहे जिस रूप में संगति की जाय, एक सा फल मिलता है।

उदाहरणार्थ, श्रीकृष्ण अनेक जीवात्माओं से मिलते हैं—कुछ उन्हें अपना शत्रु मानते हैं और कुछ इन्द्रिय-तृप्ति के साधनरूप। सामान्यतया कहा जाता है कि गोपियाँ इन्द्रिय-सुख के लिए कृष्ण पर आसक्त थीं तो भी वे भगवान् की उत्तम कोटि की भक्त थीं। किन्तु कंस, शिशुपाल, दंतवक्र तथा अन्य असुर कृष्ण के शत्रु थे। वे चाहे भयवश शत्रु के रूप में या इन्द्रिय-सुख के लिए भक्त रूप में कृष्ण की संगति में आये, मुक्ति तो सबों की हुई। भगवान् की संगति का यही परिणाम होता है। यदि कोई यह नहीं जानता कि भगवान् कौन हैं, तो भी वही परिणाम होता है। महान् साधु पुरुष की संगति से भी मुक्ति मिलती है, जिस प्रकार कोई जान कर या अनजाने ही आग की ओर जाता है, तो उसे गर्मी प्राप्त होती है। देवहूति ने अपनी कृतज्ञता प्रकट की, क्योंकि वह कर्दम मुनि से इन्द्रियतृप्ति के लिए ही संगति कर रही थी, किन्तु चूँकि वे महापुरुष थे, अतः उसे विश्वास था कि उनके आशीर्वाद से वह मुक्त हो जाएगी।

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।

न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; इह—यहाँ; यत्—जो; कर्म—कार्य; धर्माय—धार्मिक जीवन की सिद्धि के लिए; न—नहीं; विरागाय—विरक्ति के लिए; कल्पते—ले जाता है; न—नहीं; तीर्थ-पद—भगवान् के चरणकमलों का; सेवायै—भक्ति के लिए; जीवन्—जीवित रह कर; अपि—यद्यपि; मृतः—मरा हुआ; हि—निश्चय ही; सः—वह।

जिस पुरुष के कर्म से न तो धार्मिक जीवन का उत्कर्ष होता है, न जिसके धार्मिक विधि-विधानों से उसे वैराग्य प्राप्त हो पाता है और वैराग्य प्राप्त पुरुष यदि श्रीभगवान् की भक्ति को प्राप्त नहीं होता, तो उसे जीवित होते हुए भी मृत मानना चाहिए।

तात्पर्य : देवहूति का कहना है कि वह अपने पति से इन्द्रियतृप्ति के लिए अनुरक्त थी जिससे भौतिक बन्धनों से मुक्ति नहीं मिल सकती, अतः उसका जीवन वृथा गया। ऐसा कोई कार्य जिसे करने से धार्मिक जीवन की प्राप्ति न हो सके, वह व्यर्थ है। स्वभाव से प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई कार्य करना चाहता है और जब उस कार्य के करने से धार्मिक जीवन मिल सके और फिर इससे विरक्ति और विरक्ति से भक्ति प्राप्त हो सके तो समझना चाहिए कार्य सिद्ध हुआ। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है कि जिस कार्य के करने से अन्ततः भक्ति

प्राप्त नहीं होती वह भवबन्धन का कारण बनता है। यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। यदि कोई अपने सामान्य कार्य से प्रारम्भ करके क्रमशः भक्ति के पद को प्राप्त नहीं कर लेता, तो उसे मृतक के समान मानना चाहिए। जिस कार्य से कृष्णभक्ति का ज्ञान न हो ले, वह व्यर्थ है।

साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् ।
यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

सा—वही व्यक्ति; अहम्—मैं; भगवतः— भगवान् की; नूनम्—अवश्य ही; वञ्चिता—ठगी गई; मायया—माया के द्वारा; दृढम्—दृढ़तापूर्वक; यत्—क्योंकि; त्वाम्—तुमको; विमुक्ति-दम्—मुक्तिदाता; प्राप्य—प्राप्त करके; न मुमुक्षेय—मैंने मुक्ति की याचना नहीं की; बन्धनात्—भवबन्धन से।

हे स्वामी, मैं निश्चित रूप से श्रीभगवान् की अलंघ्य माया द्वारा बुरी तरह से ठगी हुई हूँ, क्योंकि भवबन्धन से मुक्ति दिलाने वाली आपकी संगति में रह कर भी मैंने मुक्ति की चाहत नहीं की।

तात्पर्य : बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि सुअवसर का लाभ उठाए। पहला अवसर मनुष्य जीवन है और दूसरा अवसर ऐसे अनुकूल कुल में जन्म ग्रहण करना जहाँ आत्मज्ञान का अनुशीलन हो सके; यह अत्यन्त दुर्लभ है। किन्तु सबसे बड़ा अवसर है साधु पुरुष की संगति का प्राप्त होना। देवहूति को इसका आभास था कि वह एक सम्राट की पुत्री है, वह पर्याप्त शिक्षित और सुसंस्कृत भी थी और अन्त में उसे परम साधु तथा महान् योगी कर्दममुनि पति रूप में प्राप्त हुए थे। इतने पर भी उसे भवबन्धन से मुक्ति न मिल पाये तो अवश्य ही वह दुर्लघ्य माया द्वारा ठगी गई है। वास्तव में यह माया सबों को ठग रही है। जब लोग वरदान प्राप्त करने के लिए देवी काली या दुर्गा के रूप में भौतिक शक्ति (माया) की पूजा करते हैं, तो वे नहीं जानते होते कि वास्तव में वे क्या कर रहे हैं। वे याचना करते हैं, “माँ! मुझे धन दो, मुझे अच्छी पत्नी दो, मुझे यश दो, मुझे सफलता दो” किन्तु मायादेवी या दुर्गादेवी के ये भक्त यह नहीं जानते कि वे उस देवी द्वारा ठगे जा रहे हैं। भौतिक उपलब्धि कोई उपलब्धि नहीं गिनी जाती, क्योंकि भौतिक वरदानों से वह ज्यों-ज्यों मोहित होता जाता है, त्यों-त्यों वह और

बंधता जाता है और उसकी मुक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। मनुष्य को इतना बुद्धिमान तो होना ही चाहिए कि आत्मबोध के लिए अपनी सम्पत्ति का किस प्रकार उपभोग करे। यही कर्म-योग या ज्ञानयोग कहलाता है। हमारे पास जो भी हो उसे परम पुरुष की सेवा के लिए उपयोग में लाना चाहिए। *भगवद्गीता* में उपदेश दिया गया है— *स्व कर्मणा तमभ्यर्चया*—मनुष्य को चाहिए कि अपने धनधान्य से वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करने का प्रयत्न करे। भगवान् की सेवा करने के अनेक प्रकार हैं और कोई भी व्यक्ति अपनी सामर्थ्य भर भगवान् की सेवा कर सकता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध के अन्तर्गत “देवहूति का शोक” नामक तेईसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।